सूरति मिश्र
का
अज्ञात काव्य

सूरतिमिश्र ग्रन्थावली–२

सूरति मिश्र का अज्ञात काव्य

[रीतिकालीन कवि एव आचार्य सूरति मिश्र के
१० अज्ञात काव्यो का प्रथम बार प्रकाशन]

समीक्षक एवं सम्पादक

डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर
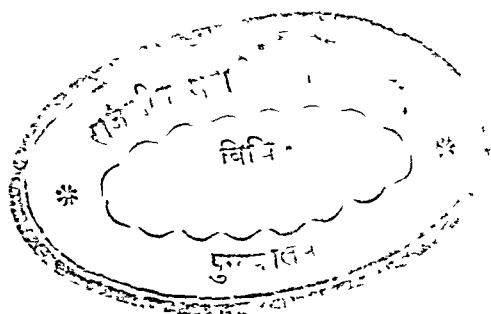
रोशनलाल जैन एण्ड सन्स

चैनसुखदास मार्ग, जयपुर–३
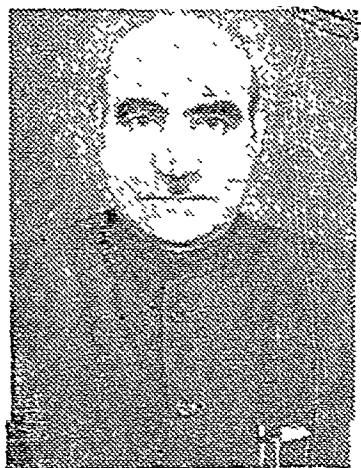
रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य के सुधी अन्वेषक

आदरणीय डा० भगीरथ मिश्र

के कर कमलों में

सादर समर्पित

प्राक्कथन

मैंने सन् १९६७ ई. में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत आर्थिक सहायता से सूरति मिश्र ग्रन्थावली का सम्पादन कार्य आरम्भ किया था। दो वर्ष पश्चात् उदयपुर विश्वविद्यालय से भी इस दिशा में प्रोत्साहन मिला। फलतः मैंने सूरति मिश्र के १७ ग्रन्थों का अन्वेषण कर पाठ-सम्पादन किया। इनमें से 'भक्तिविनोद' नामक काव्य 'सूरति मिश्र ग्रन्थावली—प्रथम भाग' के रूप में सन् १९७१ में प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत ग्रन्थ सूरति मिश्र ग्रन्थावली का द्वितीय भाग है जो "सूरति मिश्र का अज्ञात काव्य" नाम से प्रकाशित हो रहा है।

इस भाग के प्रकाशन के लिए उदयपुर विश्वविद्यालय ने १५००) का अनुदान स्वीकृत किया है। एतदर्थ मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थावली के प्रथम तथा द्वितीय भागों में सूरति मिश्र की जो कृतियाँ प्रकाशित नहीं हो सकी हैं, तृतीय तथा चतुर्थ भागों के रूप में शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित होंगी।

मेरा विश्वास है कि ग्रन्थावली के चारों भागों तथा विस्तृत अध्ययन के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् हिन्दी साहित्य के इतिहास में सूरति मिश्र को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

विषय-क्रम

शोध-भूमिका

शोध-भूमिका

अ—सूरति मिश्र सम्बन्धी सामग्री और उसका परीक्षण

१—विषय–प्रवेश

सूरति मिश्र मध्य-कालीन उन साहित्यकारों में से एक हैं, जिनको हिन्दी साहित्य के इतिहासों, खोज–विवरणों तथा शोध–प्रबन्धों एवं आलोचना–ग्रन्थों में सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता रहा है, किन्तु जिनका एक भी ग्रन्थ अभी तक पाठकों या विद्वानों को उपलब्ध नहीं है।[1] विभिन्न स्रोतों से उनके सम्बन्ध में पाठकों को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह किस सीमा तक प्रामाणिक है, यह जानने की भी अभी तक चेष्टा नहीं की गई है। संग्रहालयों में उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की कई पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं, किन्तु किसी विद्वान् या शोधार्थी ने अपने विस्तृत अध्ययन में उनका उपयोग नहीं किया है। अतः सूरति मिश्र के जीवन और साहित्य का अध्ययन आरम्भ करने से पूर्व उनके सम्बन्ध में हिन्दी–जगत् के अद्यावधि ज्ञान और उसकी प्रामाणिकता का प्रश्न उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम हम इसी प्रश्न पर संक्षेप में विचार करेंगे।

२—ज्ञान के स्रोत

सूरति मिश्र के सम्बन्ध में हिन्दी-जगत् का अद्यावधि ज्ञान निम्नांकित तीन स्रोतों पर निर्भर है :—

१—साहित्य के इतिहास

२—खोज-विवरण

३—शोध-प्रबन्ध एवं आलोचनाएँ

यहाँ हम तीनों स्रोतों से उपलब्ध सूरति मिश्र-विषयक ज्ञान की सीमाओं को संक्षेप में स्पष्ट करेंगे।

---

१. लेखक के सम्पादन में प्रथम बार उनकी एक कृति 'भक्तिविनोद' सन् १९७१ में प्रकाशित हुई है।

३—साहित्य के इतिहासों में सूरति मिश्र–सम्बन्धी उल्लेख

"हिन्दुई साहित्य का इतिहास"

हिन्दी–साहित्य का प्रथम इतिहास लिखने का श्रेय 'गार्सा–द–तासी' को दिया जाता है। इनका "इस्त्वार द लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदूस्तानी" नामक कविवृत्त प्रथम बार दो भागों में संवत् १८९६ वि० (१८३९ ई०) एवं १९०३ वि० (१८७४ ई०) में प्रकाशित हुआ था और द्वितीय संस्करण १९७८ वि० में छपा। संवत् २०१० वि० में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इसका "हिन्दुई साहित्य का इतिहास" नाम से हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। सूरति मिश्र के सम्बन्ध में सर्वप्रथम यही ग्रन्थ "सूरत कवीश्वर" नाम से सामान्य जानकारी प्रस्तुत करता है, जो इस प्रकार है :—

"सूरत कवीश्वर ने मुहम्मदशाह के राजत्व काल में और जयपुर नरेश जैसिंह × × की आज्ञा से "वैतालपचीसी" का ब्रजभाषा में अनुवाद किया।"[1]

इस परिचय से निम्नांकित बातें स्पस्ट होती हैं :—

१—सूरति मिश्र मुहम्मदशाह के शासनकाल में जीवित थे।

२—वे जयपुर नरेश जयसिंह के दरबार में रहे थे।

३—उन्होंने "वैतालपचीसी" का ब्रजभाषा में अनुवाद किया था।

तजकिरा–ई–शुअरा–ई–हिन्दी

मौलवी करीमुद्दीन ने संवत् १९०५ वि० में तजकिरा–ई–शुअरा–ई–हिन्दी" ग्रन्थ प्रकाशित कराया, जिसके प्रथम खण्ड में हिन्दी के ३९ प्राचीन कवियों का उल्लेख है। तासी के समान उसने भी इन कवियों का वर्णन ऐतिहासिक क्रम से नहीं किया है तथा जो सामग्री प्रस्तुत की है, वह भी तासी के ग्रन्थ से ली गई है। इस ग्रन्थ में सूरति मिश्र का "सूरत" नाम से क्रम संख्या २७ पर उल्लेख है, जो तासी द्वारा प्रस्तुत किये गये परिचय का ही रूपान्तर है।

"शिवसिंह–सरोज"

१९३४ वि० में ठा० शिवसिंह सेंगर ने 'शिवसिंह—सरोज' नाम से एक कविवृत्त प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ में सूरति मिश्र का निम्नांकित परिचय मिलता है :—

---

१. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, लेखक—गार्सा द तासी, अनुवादक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय–प्रकाशक: हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, प्र० सं० १९५३ ई०, पृष्ठ ३१८

"कविप्रिया ग्रन्थ केशो कृत ने सब संस्कृत के पण्डितों को इस बात पर आरूढ़ कर दिया कि वे सब संस्कृत काव्य को छोड़ भाषा काव्य करने लगे। इसी कारण संवत् १७०० में चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, कालिदास कविंद, दूलह, देव, करन × × सूरति मिश्र, देवीदास, मुबारक, रसखान, रामकवि इत्यादि कवियों ने भाषा-काव्य के बड़े-बड़े अद्भुत ग्रन्थ बनाए। संवत् १८०० में जैसे अच्छे कवि हुए ऐसे किसी सैंकरा के भीतर नहीं हुए थे।"[1]

इस परिचय के अतिरिक्त सरोजकार ने सूरति मिश्र की कविता के दो उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं, जो निम्नांकित हैं :—

"खरी होहु ग्वालिनि, कहा जु हमें खोटी देखी,
सुनो नेकु बैन सो तो और ठाँउ जाइये।
दीजै हमें दान, सो तो आज ना परब कछू,
गोरस दै, सो रस हमारे कहाँ पाइये।।
मही हमें दीजै, सो तो दै है महीपति कोऊ,
दही दीजै, दही हो तो सीरो कछु खाइये।।
"सूरति" सुकवि ऐसे सुनि हरि रीझे लाल,
दीन्हीं उर माल शोभा कहां लगि गाइये।।

अलंकार—माला

दोहा—

तड़ि घन बपु घन तड़ि वसन, भाल लाल पख मोर।
ब्रज जीवन सूरति सुभग, जय जय जुगल किशोर।।
सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास।
रच्यौ ग्रन्थ नवभूषननि, वलित विवेक विलास।।
संवत् सत्तरह सै बरस, ख्यासठि सावन मास।
सुरगुरु सुदि एकादसी, कीनौ ग्रन्थ प्रकास।।"[2]

शिवसिंह द्वारा प्रस्तुत विवरण से पता चलता है कि—

---

१. शिवसिंह—सरोज, ले० शिवसिंह, प्रथम संस्करण, संवत् १९३४ वि० पृ० २८९

२. शिवसिंह—सरोज, पृ० २८९ ।

१— सूरति मिश्र की गणना एक ओर तो देव, मतिराम आदि रीतिकारों के साथ की जाती थी और दूसरी ओर उनका नाम भक्त-कवि रसखान के साथ भी लिया जाता था।

२— शिवसिंह-सरोज की रचना के समय सूरति मिश्र की कविता के उदाहरण भी उपलब्ध थे।

३— सूरति मिश्र ने "अलंकारमाला" की रचना संवत् १७६६ में की थी।

४— अलंकारमाला का वह छंद, जिसमें सूरति मिश्र ने अपने कान्यकुब्ज होने एवं आगरा निवास करने का उल्लेख किया है, सरोजकार को ज्ञात था।

माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान

संवत् १९४५ वि० में जार्ज ग्रियर्सन कृत "माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान" ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जिसका हिन्दी-अनुवाद "हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास" नाम से किशोरीलाल गुप्त ने प्रकाशित कराया है।[1] इस ग्रन्थ में संख्या ३२६ पर "सूरति मिसर" नाम से सूरतिमिश्र का परिचय इस प्रकार दिया गया है:—

"आगरा के। १७२० में उपस्थित। बिहारीलाल (संख्या १९६४) की सतसई की एक प्रख्यात टीका, सरस-रस (राग-कल्पदुम), नखसिख, रसिकप्रिया की टीका (देखिए संख्या १३४) और अलंकारमाला नामक अलंकार-ग्रन्थ के रचयिता मुहम्मदशाह के शासन काल (१७१९-१७४८ ई०) में बैतालपच्चीसी का ब्रजभाषा में, जैसिंह सवाई (सं० ३२५, १६९९-१७४३ ई०) की आज्ञा से अनुवाद किया। यह ब्रजभाषानुवाद ही बैताल पचीसी के लल्लूजी लाल वाले सुप्रसिद्ध हिन्दुस्तानी रूपान्तर का मूलाधार है। पुनश्च: अलंकारमाला की तिथि सं० १७६६ (१७०८ ई०) दी गई है।[2]

पूर्वोक्त उद्धरण से निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं—

१— सूरति मिश्र आगरा के निवासी थे। यह तथ्य सरोजकार शिवसिंह भी अलंकारमाला का छंद लिखकर प्रकट कर चुके थे।

---

१. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास-पृ० १९८ ले० जार्ज ग्रियर्सन, अनु० किशोरी लाल गुप्त, पं० सं० १९५९ ई०, प्रकाशक-हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।

२. सूरति मिश्र का रचनाकाल १७६६-१८०० है।"

२— सूरति मिश्र १७२० में वर्तमान् थे। किन्तु यह वर्ष संवत् न होकर ईस्वी सन प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर ग्रियर्सन ने स्वयं ही सूरति मिश्र का रचना-काल संवत् १७६६-१८०० वि० बतलाया है।

३— सूरति मिश्र ने सतसई की टीका, सरस-रस, नखसिख, रसिक प्रिया की टीका, अलंकारमाला एवं बैतालपचीसी की टीका नामक ६ ग्रन्थों की रचना की। इनमें से "बैतालपचीसी की टीका" का उल्लेख तासी ने पहले ही अपने ग्रन्थ में कर दिया था तथा अलंकारमाला का उल्लेख शिवसिंह ने भी किया है। शेष चार नए ग्रन्थों का उल्लेख प्रथम बार ग्रियर्सन ने किया है।

४— बैतालपचीसी का अनुवाद जयसिंह की आज्ञा से करने की बात ग्रियर्सन ने तासी के आधार पर कही है अथवा, वह मान लेना चाहिए कि दोनों ने कही है।

५— ग्रियर्सन ने यह भी बताया है कि लल्लूलाल ने बैतालपचीसी का जो अनुवाद किया, उसका मूलाधार सूरति मिश्र कृत अनुवाद ही था।

६— अलकार माला का रचना-काल सं० १७६६ वि० (१७०८ ई०) है। यह समय शिवसिंह द्वारा प्रस्तुत अलंकारमाला के उद्धरण में भी दिया गया है।

७— ग्रियर्सन ने सूरति मिश्र का रचना काल सं० १७६६ से १८०० वि० तक बताया है, किन्तु उसका कोई प्रमाण नहीं दिया। लगता है, उन्होंने "अलंकारमाला" को सूरति मिश्र का प्रथम ग्रन्थ माना है।

मिश्रबन्धु-विनोद—

ग्रियर्सन के पश्चात् हिन्दी-साहित्य का एक बड़ा इतिहास कवि-वृत्त के रूप में ही हिन्दी में प्रस्तुत करने का श्रेय मिश्रबन्धुओं को प्राप्त है। उन्होंने "मिश्र-बन्धु-विनोद" नामक ग्रन्थ की तीन भागों में रचना की। प्रथम भाग का प्रकाशन १९७० वि० में हुआ। इससे पूर्व यू० पी० सरकार के कई खोज-विवरण सम्पादित हो चुके थे। मिश्रबन्धुओं ने उनसे लाभ उठाकर "विनोद" की सामग्री को पूर्ण बनाने की चेष्टा की। इसके प्रथम भाग में सूरति मिश्र का केवल निम्नांकित उल्लेख मिलता है:—

"आदिम देव-काल (१७१-१७०) के नामी कवियों में छत्र, बैताल, लाल, प्रियादास, गुरुगोविन्दसिंह, चंद, कवीन्द्र, श्रीधर, सूरति मिश्र और महाराजा अजीतसिंह हैं।"[१]

"सूरति मिश्र उत्तम कवि, उत्तम टीकाकार और उत्तम गद्य-लेखक हैं, आपने कई गंभीर ग्रन्थ रचे हैं।"[२]

द्वितीय भाग में क्रम-संख्या ५५५ पर सूरति मिश्र का अधिक विस्तार से परिचय दिया गया है। उसमें खोज-विवरणों से ली गई सहायता का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। विवरण इस प्रकार है:—

"ये महाशय कान्यकुब्ज ब्राह्मण मिश्र आगरा निवासी थे, जैसा कि ये स्वयं लिखते हैं—"सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरेवास :" उन्होंने अलंकार माला (खोज १९०३) नामक अलंकार-ग्रन्थ संवत् १९६६ में लिखा और संवत् १७९४ में अमरचंद्रिका नामक बिहारी-सतसई की टीका बनाई। आपने कविप्रिया की टीका भी रची, जिसमें संवत् नहीं दिया है। परन्तु हमारे पास जो पुस्तक है, वह संवत् १८५६ की लिखी हुई है। इनका नखसिख हमने ठाकुर शिवसिंह जी काँथा-निवासी के पुस्तकालय में देखा। उसमें भी संवत् नहीं दिया है, परन्तु वह प्रति १८५६ की लिखी है। इसके अतिरिक्त शिवसिंह-सरोज में इनके बनाए रसिकप्रिया (त्रै० मा० रि०) का तिलक और सरस-रस नामक दो ग्रन्थ और लिखे हैं। ये हमने नहीं देखे। याज्ञिक-त्रय ने इनके बनाए प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, भक्ति-विनोद, रामचरित्र, कृष्ण चरित्र नामक और भी ग्रन्थ देखे हैं। अतः अनुमान से कहा जा सकता है कि सूरति जी संवत् १७४० के लगभग उत्पन्न हुए होंगे। खोज में इनकी रस-गाहकचंद्रिका तथा रसरत्नमाला (खोज १९०१) का भी पता चला है। सरस-रस का (१७९१) रचना-काल १७९४ लिखा है। च० त्रै० रि० में जोरावर-प्रकाश तथा भक्तिविनोद नामक ग्रन्थ मिले हैं।

ये महाशय अच्छे कवि थे और भाषा इनकी मधुर थी। सतसई व कविप्रिया के तिलकों से इनके पाण्डित्य का पूर्ण परिचय मिलता है। ऐसे

---

१. मिश्र बन्धु-विनोद, प्रथम भाग, ले० मिश्रबन्धु, प्रकाशक—गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ११६

२. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, ले० मिश्रबन्धु, प्रकाशक—पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १९।

उत्तम तिलक बहुत ही थोड़े विद्वान् कर सके हैं। सतसई पर कम-से-कम पैंतीस-चालीस तिलक हुए हैं, परन्तु सूरति जी के तिलक की समानता एक भी नहीं कर सकता। इन्होंने अपने तिलक में शंकाएँ करके उनका समाधान बड़ी उत्तमता से कर दिया है। उनकी कवित्व-शक्ति तथा पाण्डित्य प्रशंसनीय है।"

इसके पश्चात् मिश्रबन्धुओं ने सूरति मिश्र के चार ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है:—

१—अलंकारमाला

अलंकार का ग्रन्थ, कुल ३१७ दोहों में है। इसमें अलंकारों का वर्णन उत्तम रीति से किया गया है और प्राय: लक्षण तथा उदाहरण एक ही दोहे में दे दिए गये हैं।

हिम सो हर के हास सो, जस मालोपम ठानि। (मालोपमा)
बिधु सो कंज सुकंज सो, मंजु बदन यहि बाम ।। (रसनोपमा)
सु असंगति कारन अवर, कारज भिन्न सुथान।
चलि अहि श्रुति आनहि डसत, नसत और के प्रान ।।
(असंगति)

२—नखशिख

इसमें राधा–कृष्ण का अच्छा नख–शिख ४१ छंदों में कहा गया है।

त्रिभुवनपति के हरत दुख देखत ही,
सहज सुवास ऊँचे बास सोमरस है।
नेह जुत सरसे यहाई सुख सरसे वे,
तीनिहू बरन को प्रगट सुदरस है।
सब दिन एक सो महातम है सूरति यों,
नागर सकल सुखसागर परस है।
एरी मृगनैनी पिकबैनी सुख दैनी अति,
तेरी यह बैनी तिरबैनी ते सरस है ।। १ ।।
तेरे ए कपोल बाल अति ही रसाल मन,
जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोऊ न समान जाहि कीजै उपमान अरु,
बापुरे मधूकनि की देह जारियत है।

नेकु दरपन समता की चाह करी कहूँ,
भए अपराधी ऐसे चित्त धारियत है।
सूरति सु याही ते जगत बीच आजु हू लों
उनके बदन पर छार डारियत है।। २ ।।

३—अमरचन्द्रिका

यह सतसई के दोहों की टीका है। इसे इन महाशय ने सं० १७६४ में बनाई। यह महाराजा अमरसिंह जी जोधपुर के नाम से बनाई गई। इसके समान कोई भी टीका सतसई की अब तक नहीं बनी। इसमें बहुत से अर्थ कहे गये हैं और अलकार लक्षणा, व्यंजना इत्यादि भी खूब साफ करके दिखलाई गई हैं। इस पर प्रसन्न होकर महाराज ने उनकी बड़ी खातिर की और कवि–कुलपति की पदवी दी। वास्तव में यह ग्रन्थ ऐसा ही प्रशंसनीय बना भी है।

४–कविप्रिया का तिलक

इसे भी इन महाशय ने बनाया, परन्तु इसमें संवत इत्यादि नहीं दिए गए हैं। यह भी तिलक उत्कृष्ट बना है। इसमें कुल छंदों का तिलक किया गया है। परन्तु जो-जो स्थल कठिन और विवादपूर्ण हैं, उन पर शंका रहित टीका की गई है, जो सर्वतोभावेन प्रशंसनीय है। इससे केशवदास का क्लिष्टकाव्य पाठक सहज में अच्छी तरह समझ सकते हैं।

आगे मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि—

"इन ग्रन्थों के अतिरिक्त इन्होंने बैतालपंचविंशति का संस्कृत से गद्य ब्रजभाषा में अनुवाद किया। यह उल्था महाराज जैसिंह सवाई की आज्ञा से किया गया था।

खोज रि० त्रै० में उनके बनाए हुए काव्य-सिद्धान्त, रस-रत्नाकर-माला और रसिकप्रिया की टीका रस-गाहकचन्द्रिका नामक ग्रन्थ लिखे हैं।

उदाहरण—

"कमल नयन कमल से है नैन जिनके कमलद बरन कमलद कहिए। मेघ को वरण है श्याम स्वरूप है, कमल नाभि श्री कृष्ण को नाम ही है, कमल जिनकी नाभि ते उपज्यौ है। कमलाय कमला लक्ष्मी ताके पति हैं, तिनके चरण कमल समेत गुन को जाप क्यों मेरे मन में रहो।"

ग्रन्थों की चर्चा करने के पश्चात मिश्रबन्धुओं ने निम्नांकित निष्कर्ष दिया है:—

"इन पद्य कविताओं, टीकाओं और गद्य-काव्य का विचार करने से सूरतिजी एक उत्कृष्ट कवि ठहरते हैं। हम इनको पद्माकर की श्रेणी में रखते हैं। इनकी टीकाओं का पाण्डित्य बिना पूर्व ग्रन्थावलोकन किए विदित नहीं हो सकता, अतः हम पाठकों से उनके देखने का अनुरोध करते हैं।"

मिश्रबन्धुओं द्वारा प्रस्तुत किए गए पूर्वोक्त समस्त विवरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने सूरति मिश्र के किसी भी ग्रन्थ का स्वयं अध्ययन नहीं किया था। उनकी समस्त जानकारी शिवसिंह-सरोज, याज्ञिक-बन्धुओं से प्राप्त सूचनाओं तथा खोज-विवरणों पर आधारित है। हमें इनके विवरण से निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं:—

१— सूरतिमिश्र का प्रसिद्ध कवियों में स्थान है। वे उत्तम कोटि के कवि, टीकाकार एवं गद्य-लेखक थे।

२— सूरतिमिश्र के कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने तथा आगरा में निवास करने का आधार मिश्रबन्धुओं के अनुसार भी, अलंकारमाला का वही दोहा है, जो सरोजकार ने उद्धृत किया है।

३— मिश्रबन्धुओं ने सूरतिमिश्र द्वारा रचित निम्नांकित १४ ग्रन्थों की सूची प्रस्तुत की है—

ग्रन्थ	रचनाकाल
१—अलंकारमाला	सं० १७६६ वि०
२—अमरचन्द्रिका (टीका)	सं० १७९४ वि०
३—कविप्रिया की टीका	—
४—नखसिख	—
५—रसिकप्रिया का तिलक	—
६—सरस-रस	सं० १७९४ वि०
७—प्रबोध-चन्द्रोदय	—
८—भक्तिविनोद	—
९—रामचरित	—
१०—कृष्णचरित	—
११—रसग्राहकचन्द्रिका	—
१२—रसरत्नमाला	—
१३—काव्यसिद्धान्त	—
१४—जोरावरप्रकाश	—

इस प्रकार मिश्रबन्धुओं ने सूरतिमिश्र की ग्रन्थ-संख्या की जानकारी में पर्याप्त वृद्धि कर दी है, परन्तु इस बात का पता नहीं लगाया कि उनमें से कौन से ग्रन्थ वास्तव में सूरतिमिश्र की रचनाएँ हैं तथा वे कितने प्रामाणिक हैं ?

४— मिश्रबन्धुओं ने सूरतिमिश्र के जन्म-संवत् का भी अनुमान लगाया है और एतदर्थ १७४० वि० निर्धारित किया है।

५— उन्होंने १७५१ वि० से १७७० वि० तक आदिम देव-काल और १७७१ वि० से १७९० वि० तक माध्यमिक देव-काल माना है तथा सूरतिमिश्र की गणना आदिम देव-काल के अन्तर्गत की है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास : आचार्य शुक्ल

'मिश्रबन्धु-विनोद' के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-शब्द-सागर की भूमिका १९८६ वि० में प्रकाशित कराई, जो बाद में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित हुई। शुक्लजी ने अपने इस इतिहास में सूरतिमिश्र का उल्लेख पूर्व प्रकाशित ग्रन्थों तथा खोज-विवरणों के आधार पर ही प्रस्तुत किया है। उन्होंने लिखा है—

"सूरतिमिश्र—ये आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, जैसा कि इन्होंने स्वय लिखा है—'सूरतिमिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास।' इन्होंने अलंकारमाला संवत् १७६६ में लिखी। अतः इनका कविता-काल विक्रम की अठारहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जा सकता है।"

ये नसरुल्लाखाँ नामक सरदार के यहाँ तथा दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के दरबार में आया-जाया करते थे। इन्होंने 'बिहारी-सतसई' कविप्रिया, और रसिकप्रिया' पर विस्तृत टीकाएँ रची हैं, जिनमें इनके साहित्य-ज्ञान और मार्मिकता का अच्छा परिचय मिलता है। टीकाएँ ब्रजभाषा गद्य में हैं। इन टीकाओं के अतिरिक्त इन्होंने बैताल-पंचविशति का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद किया है और निम्नलिखित ग्रन्थ रचे हैं—

१—अलंकारमाला　　२—रसरत्नमाला　　३—सरस-रस
४—रसगाहकचंद्रिका　　५—नखशिख　　६—काव्यसिद्धान्त
७—रसरत्नाकर[1]

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले. रामचन्द्र शुल्क पृ. २६९–७०

उपर्युक्त विवरण के पश्चात् शुक्लजी ने 'अलंकारमाला' तथा 'नखसिख' से दो उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं। ये दोनों उदाहरण मिश्रबन्धु-विनोद से लिए गए हैं। परिचय भी मिश्रबन्धुओं द्वारा दिए गए विवरण पर ही आधारित है। अतः जो त्रुटियाँ मिश्रबन्धुओं ने की हैं, वे शुक्लजी ने भी दुहराई हैं। उदाहरणार्थ, मिश्रबन्धुओं ने खोज-कर्त्ताओं की असावधानी से लिखी गई टिप्पणी को ज्यों-का-त्यों स्वीकार करते हुए राय शिवदासकृत 'सरस-रस' को सूरति मिश्र कृत बताया है, तो शुक्लजी ने भी उसी त्रुटि की पुनरावृत्ति कर दी है। अमरचन्द्रिका को ब्रजभाषा गद्य में रचित बताना भी इसी प्रकार की एक अन्य त्रुटि है। ये त्रुटियाँ मूल ग्रन्थ न देख पाने के कारण हुई हैं। उन्होंने एक प्रसंग में लिखा है कि :—

"सूरति मिश्र ने (संवत् १७६७) संस्कृत से कथा लेकर 'बैतालपचीसी' लिखी, जिसको आगे चलकर लल्लूलाल ने खड़ीबोली हिन्दुस्तानी में किया।"[१]

यह उल्लेख ब्रज भाषा गद्य के विकास-क्रम में किया गया है। यहाँ शुक्लजी ने बिहारी-सतसई कविप्रिया एवं रसिक प्रिया की टीकाओं की रचना ब्रजभाषा गद्य में होने की बात फिर नहीं दुहराई है। बैतालपचीसी के अनुवाद का उल्लेख प्रथम बार 'तासी' ने किया था। उसके बाद सर जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबन्धुओं ने भी बैतालपचीसी की चर्चा की। खोज विवरण में भी बैतालपचीसी की कई प्रतियाँ सूरति मिश्र-कृत बताई गई हैं। शुक्लजी ने उक्त दोनों स्रोतों के आधार पर ही बैतालपचीसी का नामोल्लेख किया है। पता नहीं, वे मिश्रबन्धुओं द्वारा गिनाए गए सूरति मिश्र कृत अन्य ग्रन्थों के नाम गिनाना क्यों भूल गए हैं ?

कुछ अन्य इतिहास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के पश्चात् डा० श्यामसुन्दरदास, डॉ सूर्यकान्त शास्त्री, डॉ. रसाल, हरिऔध, ब्रजरत्नदास, डॉ. रामरतन भटनागर आदि के इतिहास-ग्रन्थ प्रकाशित हुए, किन्तु इन इतिहासकारों में से कुछ ने तो सूरति मिश्र का नामोल्लेख तक नहीं किया और जिन्होंने परिचय दिया है, उन्होंने रामचन्द्र शुक्ल को अन्तिम प्रमाण मान लिया है। अतः इन इतिहासों से न तो सूरति मिश्र-सम्बन्धी ज्ञान में कोई वृद्धि होती है, न पूर्ववर्ती ज्ञान का परिशोधन ही होता है।

हिन्दी साहित्य का अतीत

संवत् २०१७ वि० में आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने" हिन्दी

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले. रामचन्द्र शुक्ल पृ. ४०५

साहित्य का अतीत" नामक इतिहास का द्वितीय भाग प्रकाशित कराया। इसमें उन्होंने अपने समय तक प्राप्त सूरति मिश्र-सम्बन्धी समस्त सूचनाओं को आलोचनात्मक ढंग से क्रम-बद्ध रूप में प्रस्तुत किया है। खोज-विवरणों में सूरति मिश्र के जिन ग्रन्थों के अलग-अलग परिचय दिए गए हैं, उन्हें उन्होंने व्यवस्थित करके एक स्थान पर सुलभ बना दिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सूचनाएँ निम्नांकित हैं।

१— सूरति मिश्र आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

२— इनके पिता का नाम सिंहमणि था।

३— ये गणेशजी के शिष्य थे और वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे।

४— सबसे पहले सौ कवित्तों में इन्होंने श्री नाथविलास नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है।

५— फिर भगवान् के चरित्र-वर्णन से मुड़कर ये भक्तों की ओर आए। भक्ति-विनोद नामक पुस्तिका निर्मित की।

६— विनोद की रचना कर चुकने पर इन्होंने श्री वल्लभाचार्य के सेवकों की प्रशस्ति भी भक्तमाल के नाम से प्रस्तुत की।

७— कामधेनु नाम की एक ऐसी रचना प्रस्तुत की जिसमें भगवन्नाम ही रखे गए।

८— फिर नखसिख लिखा।

९— भक्ति में पुष्ट होकर ये लोकोपकार की ओर मुड़े। सबसे पहले पिंगल-विषयक 'छन्दसार' नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया।

१०— बाद में कवि-शिक्षा पर भी एक पोथी लिखी, जिसका नाम "कवि-सिद्धान्त" रखा।

११—फिर रस अलंकार, नायिका-भेद की ओर दृष्टि डाली और अलंकारों का संक्षिप्त विवेचन 'अलंकारमाला' नामक पुस्तक में किया।

१२—रसरत्न नाम के ग्रन्थ में केवल १४ कवित्त और चौदह रत्न हैं।[१]

---

१. १. २. ३ ४. ५. ६. ७. ८. ९. १०. ११. १२. 'हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ४४५-४६।

१३—अब रस की वारी आई। इन्होंने शृंगार–सार नामक रस–ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया।

१४—खोज में रसरत्न के अतिरिक्त "रसरत्नमाला" (१९६–२४३–बी) और रसरत्नाकर (१९२६–४७४ एच) नाम के ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। पर ये सब रसरत्न ग्रन्थ ही हैं।

१५—याज्ञिक महोदय ने कृष्णचरित्र के अतिरिक्त रामचरित ग्रन्थ भी इनका लिखा बतलाया है। ये वल्लभ–कुल में दीक्षित थे, अतः हो सकता है कि "रामचरित" बलरामचरित हो।

१६—इन ग्रन्थों की रचना करने के अनन्तर ये व्याख्या और अनुवादों की ओर मुड़े। सबसे पहले इन्होंने केशव के दो ग्रन्थों रसिकप्रिया और कविप्रिया की टीका की। इनकी रसिकप्रिया की टीका का नाम "रसगाहक चन्द्रिका" है। यह टीका प्रश्नोत्तरी पद्धति पर लिखी गई है। सूरतिमिश्र की वही शैली जान पड़ती है, क्योंकि कविप्रिया और बिहारी–सतसई की टीकाएँ भी इसी प्रणाली से प्रस्तुत की गई हैं।[1]

१७—कविप्रिया की टीका भी इसी समय के लगभग निर्मित हुई होगी, पर इसमें न आश्रयदाता का नाम है, न निर्माण–काल का पता चलता है। (खोज-विवरण १९१२–१८६)।

उक्त विवरण के अनुसार जहाँनाबाद के श्री नसरुल्लाखाँ के आश्रय में इस टीका का निर्माण हुआ था। उसे बादशाह ने कदाचित उसके दानी होने के कारण 'निवाज मुहम्मदखाँ' की उपाधि दे रखी थी और वह स्वयं भी कवि था। कविता में (निश्चय ही हिन्दी की ब्रज की कविता में) अपना नाम रसगाहक रखता था, इसी से इस टीका का नाम रसगाहकचन्द्रिका रखा गया।

१८—सूरतिमिश्र रसगाहक के विद्या-गुरु अर्थात काव्य–गुरु थे।

१९—संवत १७९४ में बिहारी–सतसैया की अमरचन्द्रिका टीका निर्मित हुई। इसके नामकरण का कारण यह है कि यह[2]

---

१ १३, १४, १५, १६ हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २, पृष्ठ ४४६–४४७

२. १७, १८, हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २, पृष्ठ संख्या ४४८ १९।

जोधपुर के दीवान अमरेश या अमर सिंह के आश्रय में बनी थी।

२०—सूरतिमिश्र की इस टीका (अमरचन्द्रिका) से लल्लूलाल ने अपनी लालचन्द्रिका में शास्त्र–विषयक सारी सामग्री उठाकर बेखटके रख दी है।[१]

२१—संवत १८०० में सूरति मिश्र बीकानेर पहुँचे और वहां के तत्कालीन नरेश जोरावरसिंह के कहने पर अपनी "रसिक-प्रिया" की टीका (रसगाहकचन्द्रिका) उनके नाम पर जोरावर-प्रकाश नाम से आदि में प्रशस्ति के कुछ छन्द बदल कर प्रस्तुत कर दी।

२२—जोरावर–प्रकाश अपेक्षाकृत गद्य का अधिक व्यवहार है।[२]

२३—इन टीकाओं के अतिरिक्त सूरति मिश्र ने संस्कृत के प्रबोध–चन्द्रोदय नाटक का भी पद्यानुवाद किया है।

२४—इन्होंने शिवदास कवि कृत संस्कृत बैतालपंचविंशतिका का भी बैतालपचीसी के नाम से ब्रज भाषा में उल्था किया है। वस्तुतः लल्लूलाल ने सूरतिमिश्र के इसी ग्रन्थ का खड़ी बोली में भाषान्तर कर दिया है। (खोज १९२६–२८) में बैताल–पचीसी के चार अनुवाद सूरति मिश्र के नाम पर मिलते हैं, जो खड़ी बोली के हैं। × × ये सब वस्तुतः इनकी कृतियाँ नहीं हैं। इनके ग्रन्थ के रूपान्तर हैं।

२५—सूरति मिश्र वैष्णव थे, वल्लभ–कुल में दीक्षित थे। इसलिए उन्होंने अपने किसी ग्रन्थ में शिव की वन्दना नहीं की है।

२६—शुक्ल जी ने इनके परिचय में लिखा है—

टीकाएँ ब्रज भाषा में हैं। इन टीकाओं के अतिरिक्त इन्होंने "बैतालपचीसी" का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद किया है। ऊपर दिये गये विवेचन से पता चलेगा कि टीकाएँ गद्य में नहीं पद्य में हैं। उनमें वार्ता या गद्य का व्यवहार कदाचित है।[३]

---

१. २०, २१, २२ हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ संख्या ४४९–५०

२ २३, २४ हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ४५१

३. २५, २६ हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ४५३–५४

२७—हिन्दी मे रसिकप्रिया के सबसे प्राचीन टीकाकार सूरतिमिश्र है। इनकी टीका का नाम रसगाहकचन्द्रिका या जोरावरप्रकाश है। यह संवत १७६१ वि० में निर्मित हुई थी।[१]

२८—कविप्रिया के सबसे प्राचीन टीकाकार सूरति मिश्र है। यह टीका जहाँनाबाद के श्री नसरुल्लाह खाँ के आश्रय मे निर्मित हुई थी। इनका काव्य–नाम रसगाहक था। इनका निर्माण-काल ज्ञात नही है, पर यह निश्चित है कि यह टीका भी रसिकप्रिया की टीका के साथ ही बनी होगी, अर्थात १७६१ के लगभग।

२९—सम्पूर्ण काव्यांगों पर दृष्टि डालने वाले आचार्यों मे केशव, चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति, सूरतिमिश्र, भिखारीदास आदि है।"[२]

ये सभी सूचनाएँ पूर्ववर्ती कविवृत्तों, इतिहासो एव खोज-विवरणों से एकत्र की गई है, अत मूल ग्रन्थो के अवलोकन के अभाव के कारण इनकी अशुद्धियो का सशोधन नहीं हो सका है। इनमे से कुछ अशुद्धियाँ तो ऐसी है, जो उपर्युक्त सूचनाओ को पढते समय ही स्पष्ट रूप मे सामने आ जाती है। उदाहरणार्थ, पूर्वोक्त सूचना संख्या १६ में रसिकप्रिया की टीका का नाम रसगाहकचन्द्रिका बताया गया है और सूचना संख्या २७ में कविप्रिया की टीका का नाम भी रसगाहकचन्द्रिका उल्लिखित है। फिर सूचना संख्या २१ मे रसगाहकचन्द्रिका का ही कुछ परिवर्तित रूप जोरावर-प्रकाश बताया गया है। सूचना संख्या २५ मे उल्लेख है कि सूरति मिश्र ने अपने किसी भी ग्रन्थ मे वैष्णव होने के कारण शिव की वंदना नहीं की है, जबकि भक्तिविनोद मे शिव की वदना मे लिखे गए कई छद मिलते हैं।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास

नागरी प्रचारिणी सभा का सबसे महत्वपूर्ण प्रकाशन 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' है, जो कई भागों मे संकल्पित है। इसके षष्ठ भाग में सूरति मिश्र का परिचय देते समय अब तक के समस्त इतिहास एवं खोज-विवरणों मे प्रस्तुत किए गए विवरणो को निराधार मानकर छोड़ दिया गया है। लेखक ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि:—

१. २७, २८ हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २, पृष्ठ, ४४१–४४३
२. २९. हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ५२५

"आचार्य सूरति मिश्र के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की सामग्री उपलब्ध नहीं है। इनके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि ये आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे।"[1] इसके पश्चात् सूरति मिश्र के इन ११ ग्रन्थों के नाम गिनाए गए हैं–"अलंकार-माला, रसमाला, सरसरस, रसगाहकचन्द्रिका, नखसिख, काव्यसिद्धान्त, रसरत्नाकर, अमरचन्द्रिका, कविप्रिया की टीका, रसिकप्रिया की टीका, वैतालपंचविंशतिका का ब्रजभाषानुवाद। और फिर कहा गया है कि "इनमें से सम्प्रति एक भी उपलब्ध नहीं है। केवल एक छंद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास में उद्धृत किया गया है, जिसके आधार पर किसी भी प्रकार का निर्णय देना हमारे लिए कठिन है।"[2]

तात्पर्य यह है कि बृहत् इतिहास तक सूरति मिश्र के सम्बन्ध में विद्वानों का जो ज्ञान है, वह मात्र एक से दूसरे और फिर तीसरे विद्वान् तक चलने वाला ऐसा पिष्टपेषण है, जिसके पीछे मूल ग्रन्थों के आधार का पूर्णतः अभाव है।

ब्रज-साहित्य का इतिहास

बृहत् इतिहास के पश्चात् एक बार फिर डॉ. सत्येन्द्र द्वारा रचित "ब्रज साहित्य का इतिहास" ग्रन्थ में सूरति मिश्र का विस्तृत उल्लेख मिलता है, परन्तु इस उल्लेख में भी पूर्ववर्ती इतिहासों की सामग्री को ही क्रम-बद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है। डॉ सत्येन्द्र ने भी सूरति मिश्र कृत उन्हीं ग्रन्थों के नाम गिनाए हैं, जिनकी गणना पूर्ववर्ती इतिहासों में की गई है।

४—खोज-विवरणों में सूरति मिश्र सम्बन्धी सूचनाएँ

अंग्रेज शासन-काल में संयुक्त प्रान्तीय सरकार तथा कुछ साहित्य-सेवी संस्थाओं ने प्राचीन अज्ञात ग्रन्थों की खोज का कार्य आरम्भ कराया था। संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने आरम्भ में कुछ खोज-विवरण प्रकाशित भी कराये थे। बाद में यह कार्य नगरी प्रचारिणी सभा को सौंपा गया था। सभा ने शासन के संरक्षण में खोज का कार्य विधिवत् रूप से संचालित किया और विवरण तैयार कराए। स्वाधीनता के पश्चात् भी उत्तर प्रदेश शासन ने सभा

---

१. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, सम्पादन डॉ. नगेन्द्र पृष्ठ–३४१

२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग ६, सम्पादक डॉ. नगेन्द्र, पृष्ठ–३४१

को इस कार्य के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दी। फलत: अब तक सम्पन्न हुई खोज कार्य के विवरण भी त्रैवार्षिक विवरणों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

मिश्रबन्धुओं के समय तक जो खोज-विवरण प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप में उपलब्ध थे, उनमें उल्लिखित सूरति मिश्र-सम्बन्धी समस्त सामग्री का उपयोग 'मिश्रबन्धु-विनोद' में कर लिया गया था। इसके पश्चात् शेष सभी विवरणों की सामग्री का उपयोग करते हुए विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने इतिहास में सूरति मिश्र का परिचय प्रस्तुत किया।

यहाँ हम खोज-विवरण संख्या १३, १५ तथा १८ में उपलब्ध सूरति मिश्र-सम्बन्धी सामग्री का उल्लेख करते हैं, जिसने विशेष रूप से विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत परिचय को विस्तृत बनाया।

हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों का तेरहवाँ विवरण

इस विवरण में संख्या ४४७ ए पर 'अमरचन्द्रिका' का उल्लेख मिलता है।[१] रचनाकाल १७९४ वि० (१७३७ ई०) दिया गया है। पाण्डुलिपि १९११ की प्रतिलिपि बताई गई है। पुस्तक का विशेष विवरण नहीं है। संख्या ४७४-बी पर बैतालपचीसी का उल्लेख है।[२] कहा गया है कि "यह गद्य में है। भाषा शुद्ध खड़ीबोली है।"

इस परिचय से स्पष्ट है कि बैतालपचीसी सूरति मिश्र की रचना नहीं है, क्योंकि उनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें यह सिद्ध नहीं होता कि वे खड़ी बोली का प्रयोग करते थे। संख्या ४७४ सी, डी तथा 'ई' पर भी सूरति मिश्र सूरति कवि कृत 'बैतालपचीसी' का उल्लेख है। सी एवं डी का लिपिकाल १८९७ वि० (१८४०) ई० व १९०० वि० (१८४३ ई०) तथा ई का १९०४ वि० दिया गया है। इन प्रतिलिपियों के सम्बन्ध में कोई विशेष विवरण उल्लिखित नहीं है। ४७४ एफ पर "जोरावरप्रकाश" का परिचय है। बताया गया है कि इसकी रचना पद्य में हुई है तथा रचनाकाल १८०० वि० (१७४३ ई०) है, इसमें ५५ पत्र हैं तथा प्रति भी पूर्ण है। अन्य विवरण नहीं है। किन्तु जोरावरप्रकाश की जो प्रति मुझे मिली है, उसका आकार देखते हुए तो यही कहा जा सकता है कि या तो खोजकर्त्ता ने कोई अपूर्ण प्रति देखी है या उसने रसगाहक चन्द्रिका को ही 'जोरावरप्रकाश' समझ

---

१. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ६९८

२. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ६९९

लिया है। जैसा कि खोज-विवरण के आधार पर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी किया है। इसी खोज-विवरण में संख्या ४४७ जी पर 'रसगाहक-चन्द्रिका, टीका का उल्लेख है। इसमें भी ५२ पत्र हैं एवं पद्य में उसकी रचना हुई है। इसका रचनाकाल १६४८ वि० (१५९१ ई०) बताया गया है जो निराधार हैं। कुछ अन्य विवरण भी हैं, उनसे यह पुस्तकें 'रसगाहकचन्द्रिका' की ही प्रतिलिपि प्रतीत होती हैं, किन्तु अपूर्ण है। खोजकर्त्ता के अनुसार इस प्रतिलिपि का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री गणेशायनमः ओम श्री ब्रजसुन्दरी सिन्दूराम सुन्दर नंद नंद नाम नमः अथ सूरति मिश्र कृत रसगाहकचन्द्रिका टीका संयुक्त रसिकप्रिया प्रारभ्यते।

दोहा—रसिक शिरोमणि रसिकप्रिय, रसलीला चितचोर।
रसा रास रस मय करी, जय जय जुगलकिशोर।१।

खोज–कर्त्ता ने अन्त में लिखा है—

"विषय—प्रथम विलासः–गणेशस्तुति, ग्रन्थ–रचना का क्रम, प्रकाश, संयोग वियोग लक्षण राधिका का प्रच्छल वियोग शृंगार। षष्ठ विलास–भाव के लक्षण—मुख नेत्र और वचन के द्वारा मन की बात जिस प्रकार प्रकट की जाय, उसको भाव कहते हैं। भावों के पंच प्रकार–विभाव, अनुभाव, सात्विकी, स्थायी और संचारी—(यहीं से लेखक ने लिखना छोड़ दिया है।)"[१]

संख्या ४७४ एच पर "रसरत्नाकर" नामक ५ पत्रों वाली लघु प्रति का उल्लेख हैं जिसे पद्य में रचित पूर्ण ग्रन्थ बताया गया है। इसका रचना–काल १७६८ वि० और लिपि–काल १९१६ वि० है। इसमें नायिका–भेद वर्णन है।[२] इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री गणेशानमः। अथ रसरत्न लिख्यते।

दोहा—कमल नयन कमलादिवर, कमल नाभि कमलाय।
तिनके कमल चरण रहौ, मो मन गुन जुत जाय।।[३]

रसरत्न का आरम्भिक अंश भी यही है। इसी प्रकार आगे के उद्धरणों से मिलाने पर भी यह प्रति रसरत्न की ही प्रतिलिपि सिद्ध होती है।

---

१. त्रयोदश बिवरण, पृष्ठ ७०३–४
२. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०४
३. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०४

संख्या ४७४ 'आई' पर सतसई–टीका का विवरण देते हुए रचना–काल १७९४ वि० और लिपिकाल १८५८ वि० बताया गया है। यह प्रति अमरचन्द्रिका टीका की ही प्रतिलिपि है, कोई पृथक ग्रन्थ नहीं है, जैसा कि विवरण में उद्धृत आदि व अंत के अंशों तथा विवरण से स्पष्ट है।[1]

पंद्रहवे त्रैवार्षिक विवरण में क्रम संख्या २१३ पर 'शृंगार–सार' नामक ग्रन्थ का परिचय दिया गया है। विवरण के अनुसार इस ग्रन्थ में २४ पत्र हैं। रचना पद्य में हुई है। रचना–काल १७८५ वि० (सन १७२८ ई०) है। खोजकर्त्ता ने इस पाण्डुलिपि का विवरण वेलनगज (आगरा) के रामचन्द्र सैनी के यहां से प्राप्त किया है। उसने ग्रंथ के आदि, मध्य और अंत के अंश देकर विषय का विवरण दिया है। आदि का अंश इस प्रकार है—

श्री गणेशायनमः। रिपुपत्नी नायका।
सुमरित ही हरि छिनतु ही, दीने वसन बढ़ाइ।
मुनि प्रभाव रिपु की तरुनि, सबै गई मुरझाइ।
सपल पर नारि।
मन भावन आवन कह्यो, सावन लागत धाम।
विरमायो वालम सखी, काहू वैरिनि वाम।
उपनायका अनुनायका,
सम कुछ घटि उपनाइका, जे कनिष्टिका नाम।
लघुता युत अनुनायिका, जे सेवक जन वाम।

इस अंश में कई अशुद्धियाँ हैं। यथा, 'रिपुपली' नायका 'सपल' आदि। खोजकर्त्ता से भी पाठ उतारते समय यह भूल हो सकती है और मुद्रण की अशुद्धि भी हो सकती है। आगे जो अंश दिये गये हैं, उनमें भी ये अशुद्धियाँ वर्तमान हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि खोजकर्त्ता सामान्य शिक्षित होने के साथ-साथ पाठ–सम्वन्धी ज्ञान भी कम रखते थे। अतः उनके द्वारा दिये गये सभी विवरण विश्वसनीय नहीं हैं। इस विवरण में दिया गया अंत का अंश इस प्रकार है—

अन्त— दोहा

वरनी रस शृंगार की, संछेपहि कुछ रीति।
लखो चूक सो बनाइयो, कवि कोविद करि प्रीति॥

नगर आगरौ वसत सो, बांकी ब्रज की छाँह।
कालिन्दी कलमष हरनि, सदा वहति जा माँह॥

---

१. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०५

श्रुति पुरान कविता सरस, जप तप नृत्य सुगान ।
जहँ चरचा निशि दिन यहै, अरचा श्री भगवान ।।

भगवत पारायन भये, तहाँ सकल सुख धाम ।
विप्र कंत वजु कुल कलस, मिश्र सिंघमनि नाम ।।

तिनके सुत सूरति सुकवि, कीने ग्रन्थ अनेक ।
परमारथ वर्णन विषै, परी अधकसी टेक ।।

माथे पर राजति सदा, श्रीमद् गुरू गनेस ।
भक्ति-काव्य की रति लही, लहि जिनके उपदेस ।।

इस असन्तम अंश में छंद–संख्या नहीं है । आगे फिर एक अंश उद्धृत किया गया है और उसके साथ कहा गया है कि निम्न लिखित ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं—

प्रथम कियो सत कवित में, इक श्रीनाथविलास ।
इक ही तुक पर तीन सौ, प्रास नवीन प्रकास ।।

श्री भागवत पुरान के तहँ, श्रीकृष्ण चरित्र ।
वरने गोवर्द्धन–धरन, लीला लागि विचित्र ।।

भक्तविनोद सु दीनता, प्रभु सो सिक्षा चित ।
देव तीर्थ अरु पर्व के, समै समै सु कवित्त ।।

वहुरि भक्तमाला कही, भक्तिन के जस नाम ।
श्री वल्लभ आचार्य के, सेवक के गुन धाम ।।

कामधेनु इक कवित में, कढ़त सत वरन छंद ।
केवल प्रभु के नाम तहँ, धरे करन आनन्द ।।

इक नख-सिख माधुर्य है, परम मधुरता लीन ।
सुनत पढ़त जिहि होत है, पावन परम प्रवीन ।।

छंदसार इक ग्रन्थ हैं, छंद रीति सब आहि ।
उदाहरन ये प्रभु जसै, यौं पवित्र विधि ताहि ।।

कीनों कवि सिद्धान्त इक, कवित रीति को देखि ।
अलंकारमाला विषै, अलंकार सब लेखि ।।

इक रसरत्न कीनों बहुरि, चौदह कवित्त प्रमान ।
ग्यारह सौ बावन तहाँ, नाइकानि को ज्ञान ।।

इह इक रस-सिंगार तहँ, उदाहरण रस-रीति ।
चारि ग्रन्थ ये लोकहित, रचे धारि हिय प्रीति ।।

कहा कहूं ये ग्रन्थ हू, प्रभु जस अंकित मानि ।
ज्यों व्यंजन वह लवन तनु, पाइ स्वादु मन मानि ।।

जा ग्रन्थ में कवित में, आवै हरि को नाम ।
सौ वहु सुभ सूरत सुकवि, अति पवित्र सुख धाम ।।

संवत सत्रह सै तहाँ, वर्ष पचासी जानि ।
भयोग्रन्थ गुरु पुष्य में, सित अषाड़ त्रय मानि ।।

वहु ग्रन्थनि मथिकै सुयस, रच्यौ सार सिंगार ।
सूरति सुकवि पढ़े गुनै, पावै सब सुख सार ।। ६८ ।।

इति श्री सूरति मिश्र विरचिते सिंगारसारे विप्रलम्भ वर्णन नाम सप्तमो विलास संपूर्ण सुभ ।[1]

आचार्य विश्वनाथ मिश्र ने पूर्वोक्त विवरणों को आधार बनाकर ही सूरति मिश्र का निम्नांकित परिचय दिया है—

"सूरति मिश्र आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । वह आगरा जो ब्रज की बांकी छाँह था, जिसकी गोद में कल्मष हारिणी कालिंदी प्रवाहित होती है, वह कालिंदी तट जहाँ श्रुति–पुराण की व्याख्या का पठन-पाठन और जप, तप, नृत्य, गान आदि का समारोह हुआ करता था । इनके पिता का नाम सिंहमणि मिश्र था । ये गंगेशजी के शिष्य थे और वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे ।"[2]

---

१. पंद्रहवां विवरण, पृष्ठ ३३६
२. हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४४६ ।

उपर्युक्त परिचय पन्द्रहवें विवरण में उद्‌धृत अन्त के अंश का गद्य रूपान्तर है। इसी प्रकार तृतीय अंश का रूपान्तर इस प्रकार है—

"आरंभ में ये भक्तिकाल के कर्त्ता के रूप में सामने आए। सबसे पहले सौ कवित्तों में इन्होंने "श्रीनाथविलास" नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन है। पर ये स्वभाव से चमत्कारवादी थे। अपने पांडित्य का प्रदर्शन करने के लिये इसमें चौथे चरण की तुक तो एक ही रखी, पर तीन चरणों का अन्त्यानुप्रास (तुकान्त) का काफिया ये नवीन रखते गए। इस प्रकार एक ही तुक के तीन सौ नवीन अन्त्यानुप्रासों में यह ग्रन्थ लिखा गया, किसी तुक की पुनरुक्ति नहीं हुई। इन्होंने श्रीकृष्णचरित्र भी श्रीमद्‌भागवत के आधार पर ही लिखा है, जिसमें विचित्र शैली से गोवर्द्धन-लीला का वर्णन किया गया है। फिर भगवान् के चरित्र-वर्णन से मुड़कर ये भक्तों की ओर आए। भक्त-विनोद नामक पुस्तिका को निर्मित किया, जिसमें भगवान् के प्रति दैन्य और उनसे भक्ति की प्राप्ति एवं रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है। तीर्थों और पर्वों के महात्म्य की थोड़ी रचना भी इसमें है। वस्तुतः यह भक्तों की दिनचर्या का ग्रन्थ है। विनोद की रचना कर चुकने पर इन्होंने वल्लभाचार्य के सेवकों की प्रशस्ति भी भक्तमाल के नाम से प्रस्तुत की, जिसमें भगवन्नाम ही रखे गए। कामधेनु की रचना में जहाँ से पढ़िए भगवान् के नाम ही निकलते हैं। फिर 'नखशिख' लिखा। इस प्रकार नाम, रूप लीला और धाम आदि भक्ति के चारों स्तम्भों पर इनकी रचनाएँ प्रस्तुत हो गईं। भक्ति में पुष्ट होकर ये लोकोपकार की ओर मुड़े। साहित्य का जैसा अभ्यास इन्होंने कर लिया था, उसका लाभ दूसरे भी उठा सकें और उसका मार्ग सरल हो, इसी विचार से ये रीति ग्रन्थों की रचना में लगे। सबसे पहले पिंगल-विषयक "छंदसार" नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमें जितने उदाहरण दिए गए हैं, उनमें प्रभुयश का ही कीर्तन है। बाद में कवि-शिक्षा पर भी एक पोथी लिखी, जिसका नाम 'कवि सिद्धान्त' रखा। फिर रस, अलंकार, नायिका-भेद की ओर दृष्टि डाली और अलंकारों का संक्षिप्त विवेचन, अलंकारमाला नामक पुस्तक में किया। इसमें संस्कृत के 'चन्द्रालोक' और उसकी टीका कुवलयानन्द की पद्धति पर अलंकार लक्षण और लक्षणा सहित एक ही दोहे में समझाया गया है। 'रसरत्न' नाम के ग्रन्थ में केवल चौदह कवित्त अथवा चौदह रत्न हैं। इनमें ११५२ नायिकाओं का वर्णन है। तात्पर्य यह है कि नायिकाओं के भेदोपभेद इन चौदह कवित्तों में ही समझा दिए गए हैं। अब रस की बारी आई। इन्होने "शृंगार सार" नामक रस-ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया। कहने की

आवश्यकता नहीं कि इन सब की रचना भी भक्ति-मिश्रित है। सूरति मिश्र की भावना थी कि ठीक तुलसी की भाँति बिना भगवद्–यश–वर्णन के काव्य से रस नहीं आ सकता, वैसे ही जैसे बिना नमक के भोजन में स्वाद नहीं आया करता।"[1]

मिश्रजी द्वारा प्रस्तुत किया गया उपर्युक्त परिचय जहाँ एक ओर खोजकर्त्ता के अपरीक्षित विवरण पर आधारित है, वहाँ दूसरी ओर उसमें पूर्वोक्त खोजविवरण में दिए गए नाम-क्रम को ही रचना-काल का क्रम भी मान लिया गया है, जबकि सभा के खोज-विवरणों में ही कतिपय ग्रन्थों के रचना-काल भी दिए गए हैं। तात्पर्य यह है कि मिश्रजी ने खोज-विवरणों की सामग्री को ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत करके सूरतिमिश्र का विस्तृत परिचय लिखा है। इनके इतिहास के समान ही अन्य इतिहासों की सामग्री भी खोज-विवरणों को अपना उपजीव्य बना कर चली है।

हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों का अठारहवाँ विवरण

सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थों के अठारहवें विवरण के द्वितीय भाग में सूरति मिश्र का संक्षिप्त परिचय मिलता है। उसमें पृष्ठ ११३४ पर जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह को उनका आश्रयदाता बताया गया है। पृष्ठ ८५४ पर संख्या २९३ के 'क' के अन्तर्गत सूरति मिश्र रचित 'प्रबोधचंद्रोदय' ग्रन्थ का उल्लेख हैं। इसमें प्रति पृष्ठ ८ पंक्तियों वाले केवल ३९ पत्र हैं। ग्रन्थ ब्रजभाषा पद्य में है तथा लिपिकाल १८८६ वि० बताया गया है। संख्या २९३ 'ख' पर 'छंदसार' का उल्लेख है। इसकी रचना पद्य में हुई है।

अन्य खोज-विवरण

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर से प्रकाशित खोज-विवरण में अनुक्रमांक ८१ पर सूरति मिश्र रचित "अलंकारमाला" "छंदसारोक्त षोडशकर्म टीका" तथा "काव्य-सिद्धान्त" की तीन प्रतियों के नामों का उल्लेख है। इनका कोई विशेष परिचय नहीं दिया गया। छंदसारोक्तषोडश टीका का मूल भाग हिन्दी में तथा टीका भाग राजस्थानी में बताया गया है। इससे स्पष्ट है कि खोजकर्त्ता ने इसे सूरति मिश्र-रचित मानकर भूल की है, क्योंकि हमें सूरति मिश्र के जो ग्रन्थ मिले हैं, उनमें न तो वह ग्रन्थ सम्मिलित है, न किसी भी ग्रन्थ की भाषा राजस्थानी है। तात्पर्य यह है कि खोज विवरणों में जो सामग्री मिलती है, वही साहित्य के इतिहासों में उपयोग में लाई गई है और उसकी प्रामाणिकता की परीक्षा भी नहीं की गई है।

---

१. हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग, पृष्ठ ४४७।

५—शोध-प्रबन्धों तथा आलोचना-ग्रन्थों में सूरति मिश्र-सम्बन्धी सामग्री

रीतिकाल के साहित्य पर शोध करने वाले कुछ विद्वानों ने भी संदर्भानुसार सूरति मिश्र के ग्रन्थों का उल्लेख किया है। डॉ० नगेन्द्र का शोध-ग्रन्थ "रीति-काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता" रीतिकाल-सम्बन्धी शोध-ग्रन्थों में अधिक प्राचीन है। किन्तु इस ग्रन्थ में सूरति मिश्र का उल्लेख करने का कोई प्रसंग प्रस्तुत नहीं हुआ। अन्य शोध प्रबन्धों में डॉ० भागीरथ कृत 'हिन्दी-काव्य शास्त्र का इतिहास' का इस दृष्टि से प्रथम स्थान है। इस ग्रन्थ में पृष्ठ ११२ से ११४ तक सूरति मिश्र का परिचय मिलता है। यह परिचय भी खोज-विवरण की सामग्री पर ही आधारित है। अतः अधिकांशतः वे ही बातें दुहराई गई है, जो हिन्दी साहित्य के इतिहासों में मिलती हैं। परिचय का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"सूरति आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, जैसा इनके दोहे के एक चरण से पता चलता है। सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास। इन्होंने कई ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर लिखे। जैसे—अलकारमाला. रसरत्नमाला, रसगाहकचन्द्रिका, काव्य-सिद्धान्त, रसरत्नाकर, सरसरस आदि। इन्होंने कविप्रिया और रसिकप्रिया की टीकाएँ भी ब्रज-भाषा गद्य में लिखी है। इनका अलंकारमाला ग्रन्थ सं० १७६६ की रचना है। यह अलकारों पर लिखा हुआ भाषाभूषण के ढग का ग्रन्थ है, जिसका आधार 'चन्द्रालोक' जान पड़ता है।"[१]

इसके पश्चात् काव्य-सिद्धान्त' का परिचय दिया गया है, जो टीकमगढ़ में देखी गई किसी पाण्डुलिपि के आधार पर है। इस परिचय में 'काव्य-सिद्धान्त' की केवल विषय-वस्तु संक्षेप में उल्लेख है।

संवत् १००६ वि० में डॉ० मोतीलाल मेनारिया का शोध-प्रबन्ध 'राजस्थान का पिंगल साहित्य' प्रकाशित हुआ। इस प्रबन्ध में सूरति मिश्र का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्रस्तुत हुआ है—

"ये आगरा निवासी कनौजिया ब्राह्मण सिंहमणि मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७४६ के लगभग हुआ। ये जहांनाबाद के नसरुल्लाखाँ के आश्रित थे और जयपुर, बीकानेर आदि राज्यों के दरबारी कवि भी रहे थे। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज की रिपोर्टों इत्यादि में इनके रचे निम्न लिखित १६ ग्रन्थ बताए गए हैं—(१) अलकारमाला (२) बिहारी

---

१. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास–डॉ० भागीरथ मिश्र प्रथम संस्करण २००५ वि०, पृष्ठ ११२–१३

सतसई की अमरचन्द्रिका टीका (३) कविप्रिया की टीका (४) नखशिख (५) रसिकप्रिया का तिलक (६) रस-सरस (७) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक (८) भक्ति-विनोद (९) रामचरित्र (१०) कृष्णचरित्र (११) रसग्राहक-चन्द्रिका (१२) रसरत्नाकर (१३) सरस-रस (१४) भक्तविनोद (१५) जोरावरप्रकाश (१६) बैतालपंचविंशति (१७) काव्यसिद्धान्त (१८) रसरत्नाकरमाला (१९) शृंगारसार।"[1]

आगे उन्होंने लिखा है कि "इनके रासलीला अथवा दानलीला नामक एक और ग्रन्थ का पता हाल ही में लगा है, जिसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है।

इसके अतिरिक्त अपने 'शृंगारसार' ग्रन्थ में सूरति मिश्र ने श्रीनाथ-विलास, भक्तमाल, कामधेनुकवित्त, कविसिद्धान्त और छंदसार—इन पाँच और ग्रन्थों का उल्लेख किया है, परन्तु उनमें से केवल छंदसार अभी तक हस्तगत हुआ है, शेष का पता नहीं।"[2]

वस्तुतः डॉ० मेनारिया द्वारा प्रस्तुत विवरण जैसा कि आरम्भ में उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है, सभा खोज-विवरणों से ही संकलित किया गया है। 'शृंगार सार' ग्रन्थ भी उन्होंने देखा नहीं है। खोज-विवरण में उसके जो अंश छपे हैं, उन्हीं में सूरति मिश्र के उन ग्रन्थों का उल्लेख है, जिनके न मिलने की सूचना डॉ० मेनारिया ने दी है। अतः सूरति मिश्र के सम्बन्ध में उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री में पूर्वोल्लिखित तथ्यों का ही पिष्ट-पेषण है।

संवत् २०११ वि० (१९५४ ई०) में लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉ० हीरालाल दीक्षित-रचित "आचार्य केशवदास" नामक शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में सूरति मिश्र की कतिपय रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख मात्र मिलता है, जो इस प्रकार है—

१— जोरावरप्रकाश प्रथम प्रति, पृष्ठ संख्या २२०, छंद संख्या ४२०८, स्थान–ला० विद्याधर' होरीपुर-दतिया।

२— जोरावरप्रकाश, द्वितीय प्रति, पृष्ठ १४४, छंद संख्या २२६८, प्रतिलिपि-काल १८६१ ई० स्थान–रमणलाल हरिचन्द चौधरी बाजार कोसी, मथुरा।

३— रसगाहकचन्द्रिका, प्रतिलिपि काल १८१२ ई० स्थान रमणलाल हरिचन्द चौधरी, बाजार कोसी मथुरा।[3]

---

१. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृष्ठ १३२

२. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृष्ठ १३३

३. आचार्य केशवदास–डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ९८

आगे इन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया गया है—

"जोरावरप्रकाश तथा रसगाहकचन्द्रिका सूरति मिश्र ने लिखी थी। यह आगरा निवासी और जहाँनाबाद दिल्ली के नसरुल्लाखाँ की सेवा में थे। यह सम्भवत: केशव के प्रथम टीकाकार थे। जोरावरप्रकाश की रचना सन् १७३४ में नसरुल्लाखाँ उपनाम रसगाहक के कहने पर हुई थी।"[1]

डॉ० दीक्षित ने कविप्रिया की टीका का उल्लेख अपने शोध-प्रबन्ध में किया है—

"कविप्रिया सटीक—पृष्ठ संख्या १००, छंद-संख्या २२५०, प्रतिलिपि काल १८५६ वि० अथवा १७९९ ई०। प्राप्ति स्थान–जुगलकिशोर मिश्र, गंधोली, जिला सीतापुर। यह टीका सूरति मिश्र ने लिखी थी। सूरति मिश्र का उल्लेख रसिकप्रिया की टीकाओं, जोरावरप्रकाश तथा रसगाहकचन्द्रिका के सम्बन्ध में पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।"[2]

स्पष्ट है कि डॉ० दीक्षित ने समस्त तथ्य खोज-विवरणों से उद्धृत किये हैं।

१९५६ में डॉ० भागीरथ मिश्र का रीतिकालीन साहित्य पर द्वितीय ग्रन्थ "हिन्दी रीति-साहित्य" प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ में मिश्र जी ने ध्वनि-संप्रदाय के अन्तर्गत सूरति मिश्र का निम्नांकित उल्लेख किया है।[3]

"सूरति मिश्र—आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। काव्य-शास्त्र पर इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे, जैसे अलंकारमाला, रसरत्नमाला, रसगाहकचन्द्रिका, काव्यसिद्धान्त, रसरत्नाकर, सरसरस, जोरावरप्रकाश, अमरचन्द्रिका आदि। रसगाहकचन्द्रिका रसिकप्रिया की टीका है, जिसे इन्होंने जहाँनाबाद के नवाब नसरुल्लहखाँ के कहने पर सं. १७९१ वि० में लिखा। जोरावरप्रकाश रसिकप्रिया की दूसरी टीका है, जो १८०० वि० में जोधपुर नरेश जोरावरसिंह के लिए लिखी गई। अमरचंद्रिका सूरति मिश्र द्वारा लिखी गई सतसई की टीका है। इनकी वैतालपचीसी १८ वीं शती के हिन्दी-गद्य का नमूना है। जिसे पहला उपन्यास माना जा सकता है। रसरत्नाकर १७६८ वि० का लिखा शृंगार व नायिका-भेद का

---

१. आचार्य केशवदास–डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ९९
२. आचार्य केशवदास–डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ १००–१०१
३. हिन्दी रीति साहित्य-डॉ० भागीरथ मिश्र, प्रथम संस्करण १९५६ ई०, पृष्ठ–९५

ग्रंथ है। ध्वनि का निर्णय करने वाला इनका ग्रंथ काव्य-सिद्धान्त है, जिसमें काव्य-प्रकाश के आधार पर काव्य का विवेचन और ध्वनि-निरूपण है। काव्य की परिभाषा इन्होंने अपनी निजी प्रस्तुत की है—

वरनन मन रंजन जहाँ, रीति अलौकिक होइ।
निपुन कर्म कवि को जु तिहि, काव्य कहत सब कोइ।।

कवि का वह निपुण कर्म, जिसमें अलौकिक रीति से मनोरंजक वर्णन हो, काव्य है। यह बड़ी व्यापक परिभाषा है, जो किसी भी सिद्धान्त-विशेष से सम्बन्ध नहीं रखती। ग्रंथ में काव्य-कारण, प्रयोजन, शब्दार्थ तथा शब्द-शक्तियाँ, दोष, गुण, अलंकार आदि का वर्णन प्रमुखतया काव्यप्रकाश के आधार पर है। अंत में छंदों का भी वर्णन है। काव्यशास्त्र के सभी अंगों पर प्रकाश डालने वाला यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है।

मिश्र जी के इस विवरण में भी "रसरत्नमाला" तथा "रसरत्नाकर" सूरति मिश्र के पृथक ग्रन्थ बताये गये हैं, जबकि ये ग्रन्थ 'रसरत्न" के ही भिन्न नाम हैं। इसी प्रकार "सरस-रस" को सूरति मिश्र कृत ग्रन्थ मानने की पुरानी त्रुटि इसमें भी दुहराई गई है। "जोरावर-प्रकाश" जोधपुर-नरेश जोरावरसिंह के लिए लिखित बताई गई है, जबकि यह पुस्तक बीकानेर नरेश जोरावरसिंह के लिए लिखी गई थी। मिश्र जी ने काव्य-सिद्धान्त की रचना का आधार "काव्यप्रकाश" माना है।

संवत २०१५ वि० में रीतिकाल से सम्बन्धित शोध-प्रबन्ध डा० मनोहर-लाल गौड़ कृत 'घनानन्द और स्वच्छंद काव्य-धारा' प्रकाशित हुआ। सं० २०१६ वि० (१९५८ ई०) में डॉ० सत्यदेव चौधरी कृत शोध-प्रबन्ध "हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य" छपा। इन दोनों ही ग्रन्थों में सूरति मिश्र का उल्लेख नहीं है। सन् १९९५ में ही प्रकाशित हरिमोहन श्रीवास्तव के आलोचना ग्रन्थ "मध्यकालीन हिन्दी गद्य" में सूरति मिश्र का नाम हिन्दी-गद्य के निर्माताओं में सम्मिलित किया गया है तथा लिखा गया है कि—

"सूरति मिश्र (१७६७) : ये आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्होंने ब्रजभाषा गद्य की सर्वांगीण उन्नति करने का प्रयास किया था। अमरचन्द्रिका नाम से बिहारी-सतसई की टीका की और "कविप्रिया तिलक" नाम से केशव की कविप्रिया के क्लिष्ट स्थलों की मार्मिक और स्पष्ट टीका लिखी है और इसके अतिरिक्त इन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की थी। संवत् १७६८ में "बैताल-पंचविंशति" का ब्रजभाषा गद्य में अनुवाद भी किया था।

इसी पुस्तक के आधार पर आगे चलकर लल्लूलाल जी ने खड़ी बोली में वैतालपचीसी की रचना की। इनकी कविप्रिया-तिलक की भाषा का नमूना इस प्रकार है :—

"सीसफूल सुहाग अरु बैंदा माँग ए दोऊ आए पांवड़े सोहे
सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आए हैं।"[१]

यह परिचय मूल ग्रन्थों को देखकर नहीं लिखा गया है, खोज-विवरणों पर ही आधारित है। इसीलिए लेखक ने पद्य में रचित 'अमरचन्द्रिका' एवं कविप्रिया टीका को गद्य में लिखी गई टीकाएं मान लिया है। उसने वैताल-पचीसी एवं कविप्रिया का केवल उतना ही उल्लेख किया है, जितना खोज-विवरणों में मिलता है।

सन् १९६४ ई० में प्रकाशित 'हिन्दी के रीतिकालीन अलंकार-ग्रन्थों पर संस्कृत का प्रभाव' नामक अपने शोध-प्रबन्ध में डा. कुन्दनलाल जैन ने सूरति मिश्र के अलंकार माला ग्रंथ का परिचय इस प्रकार दिया है :—

अलंकारमाला : सूरति मिश्र (वि० संवत् १७६६ के आसपास) सूरति ने अलंकारों पर अलंकारमाला ग्रन्थ की रचना की थी :—

अलंकार कवितान के, सबन समुझिवे हेत।
रच्यो ग्रन्थ सूरति सु यह, लच्छिन लच्छ निकेत ॥२॥

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति संख्या १४५८-२५७३ साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय में प्राप्त है। परन्तु यह प्रति खण्डित है, जिसमें केवल १७ पृष्ठ हैं। इसमें न तो रचना-काल है और न किसी प्रकार का परिचय ही। यह अलंकारों पर लिखा हुआ श्रेष्ठ ग्रन्थ जान पड़ता है। × × अलंकारों के नाम और भेद जो यहाँ दिए गए हैं, वह प्राय: कुवलयानंद से समानता रखते हैं, परन्तु रूपक और व्यतिरेक के भेदों में अन्तर है। × × इस ग्रन्थ की वर्णन-शैली बहुत कुछ चंद्रालोक अथवा भाषा-भूषण के ढंग पर है। अधिकतर एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण देने का प्रयास किया गया है।

लेखक की आलोचना-शक्ति का अनुमान होता है और साथ ही ऐसा जान पड़ता है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना आचार्य बन कर ही की थी, कवि बन कर नहीं।[२]

---

१. मध्यकालीन हिन्दी गद्य, पृष्ठ १००-१०१

२. हिन्दी के रीतिकालीन अलंकार-ग्रन्थों पर संस्कृत का प्रभाव—डॉ० कुन्दन लाल जैन, साहित्य-निकेतन, बरेली, प्र० सं० १९६४ ई०

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि लेखक ने अलंकारमाला की जिस प्रति को आधार बनाया है, वह १७ पृष्ठों की खण्डित प्रति है और उसने उसी के आधार पर सूरति मिश्र के सम्बन्ध में अनुमान-पद्धति से अपने विचार व्यक्त किए हैं, तथा आधार-ग्रन्थों का उल्लेख डा० भागीरथ मिश्र के इतिहास के आधार पर किया है।

डॉ० जैन के शोध-प्रबन्ध के पश्चात् रीति-कालीन अलंकार-साहित्य का विवेचन प्रस्तुत करने वाले दो अन्य शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुए :—

(१) रीतिकालीन अलंकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन – डॉ० ओमप्रकाश शर्मा।

(२) हिन्दी में शब्दालंकार–विवेचन – डॉ० देशराजसिंह भाटी।

किन्तु इन दोनों ही ग्रन्थों में सूरति मिश्र के किसी भी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं मिलता। रीतिकालीन साहित्य पर विचार करने वाले दो अन्य शोध-प्रबन्ध हैं—

१—हिन्दी काव्य-शास्त्र में रस-सिद्धान्त – डॉ० सच्चिदानंद चौधरी

२—रीतियुगीन काव्य – डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा

इन ग्रन्थों में भी सूरति मिश्र का कोई उल्लेख नहीं किया गया।

निष्कर्ष

पूर्वोक्त समस्त अध्ययन से स्पष्ट है कि गार्सा द तासी से लेकर अद्यावधि लिखित साहित्य के इतिहासों, खोज-विवरणों तथा रीतिकाल से सम्बन्धित शोध-प्रबन्धों एवं आलोचना-ग्रन्थों में सूरति मिश्र के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्रकाशित हुआ है, वह अत्यन्त अल्प एवं पिष्ट-पेषित है तथा उसको उनके मूल ग्रन्थों से प्रमाणित नहीं किया गया है। आरंभ में गार्सा द तासी, शिवसिंह सैंगर, मिश्रबन्धुओं तथा रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों व खोज-कर्त्ताओं ने सूरति मिश्र की रचनाओं के सम्बन्ध में जो चलते विवरण प्रस्तुत किए थे, उन्हीं को भाषा बदल कर आगे के सभी ग्रन्थों में दुहराया जाता रहा है। पुनरावृत्ति और पिष्ट-पेषण की इस प्रक्रिया से सूरति मिश्र के जीवन और साहित्य का जो परिचय पाठकों के लिए सुलभ हुआ, उसमें अनुमान की प्रधानता है तथा भ्रान्तियों का ही विकास हुआ है। न तो अभी तक उनके ग्रन्थों की प्रामाणिक नामावली सामने आ सकी है, न सूरति मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व के परीक्षण का ही किसी ने प्रयास किया है। वास्तविक बात यह है कि सूरति मिश्र का एक भी ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ है।[1] जहाँ तक हस्तलिखित

१. लेखक के सम्पादन में प्रकाशित भक्ति विनोद को छोड़ कर।

९. दानलीला

१०. अलंकारमाला

११. काव्यसिद्धान्त

१२. छंदसार-पिंगल

१३. कामधेनु-कवित्त

१४. प्रबोधचन्द्रोदय भाषा

१५. अमरचन्द्रिका

१६. कविप्रिया-टीका

१७. रसरत्न-टीका

यहाँ इन ग्रन्थों की विभिन्न प्रतियों का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१. भक्ति-विनोद

मुझे इस ग्रन्थ की निम्नांकित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं :—

(क) उदयपुर की प्रति

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर संग्रहालय में यह प्रति सग्रहीत है। इसका ग्रन्थाङ्क ३९६/२२१९ है। गुटका में यह रचना पत्र ३० से आरम्भ होकर पत्र ५९ पर समाप्त हुई है। इसका आकार २४·६ से० मी० × १६·३ से० मी० है तथा पुराने बाँसी कागज का प्रयोग हुआ है। संवत १८७८ वि० में महाराज कुमार जवानसिंह के पठनार्थ इसको लिखा गया था, जैसा कि इसकी निम्नांकित पुष्पिका से स्पष्ट है:—

"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं भक्ति विनोद ग्रन्थ समाप्तं। संवत १८७८ भादुवा सुद १ भौम वासरे पठनार्थ धर्ममूर्ति महाराज श्री १०८ श्री जवानसिंह जी चिरंजीवः। लिखितं भट्ट दयाराम जोतसी। श्री। श्री।।"

कागज तथा लिपि दोनों से इस हस्तलिखित प्रति की प्राचीनता स्पष्ट है। इस प्रति में अन्तिम छन्द की संख्या २२४ है किन्तु पाण्डुलिपि में कुल २२३ छन्द ही हैं। वस्तुतः लिपिकर्त्ता ने भूल से १८२ छंद की क्रम-संख्या १८३ कर दी है, जिसके कारण अन्तिम छंद संख्या बढ़ गई है। सभी प्रसंग अलग-अलग शीर्षकों में प्रस्तुत किए गए हैं। प्रति सुवाच्य, पूर्ण तथा सु–स्पष्ट है। यह महाराजा के संग्रहालय की प्रति है, अतः प्रामाणिक मानी जा सकती है।

(ख) करहल (मैनपुरी) की प्रति

मुझे यह प्रति करहल, जिला मैनपुरी, के निवासी स्वर्गीय पण्डित बाबूराम तिवारी के घर उनके अनुज पण्डित पुत्तूलाल तिवारी के माध्यम से प्राप्त हुई है। इसकी पुष्पिका में लिपिकाल अंकित नहीं है। यथा—

"इति श्री भक्तिविनोद ग्रन्थ सूरति मिश्र विरचितं समाप्त।"

यह प्रति पूर्णतः सुवाच्य तथा सुस्पष्ट है। इसमें कुल छंद २२३ हैं, और अन्तिम छंद की संख्या भी २२३ दी गई है। छंदों का क्रम 'क' प्रति से मिलता है।

इसका पाठ अन्य सभी प्रतियों से अधिक शुद्ध है।

(ग) भरतपुर की प्रति

भरतपुर के राजकीय जिला पुस्तकालय में यह प्रति गुटका संख्या १०३–१०७ में क्रम संख्या १०६ पर सुरक्षित है। इसका आकार $\frac{२० \times २६}{८}$ इंच है। हर पृष्ठ पर २१ पंक्तियाँ तथा ६ शब्द हैं। इस प्रति में अन्तिम छंद की संख्या १४४ पड़ी हैं, किन्तु वास्तव में इस प्रति में कुल १३९ छन्द ही संकलित हैं; शेष ५ छन्द जो नहीं हैं, उनकी क्रम-संख्या निम्नांकित है:—

४२, ४६, ८१, ९४ तथा ११७!

क्रम-संख्या ११७ पर वर्षगाँठ की वार्ता को स्थान दिया गया है। क, ख तथा ङ प्रतियों के मूल विषय-सम्बन्धी अन्तिम छन्द संख्या २२२ से इस प्रति का अन्तिम छन्द १४४ मिलता है, किन्तु शेष छन्दों में प्रायः क्रम-हीनता है। 'घ' प्रति में भी मूल विषय का अन्तिम छन्द यही है। 'ग' प्रति में 'क' एवं 'ख' का पुस्तक-सम्बन्धी छन्द २२३ नहीं है। इस प्रति में कुछ नए छन्द भी हैं, जो अन्य प्रतियों में नहीं मिलते। उनकी क्रम-संख्या ४७, ४८, ४९, ७३ तथा १२२ है। ये छन्द यहाँ दिए जाते हैं:—

४७— विघन जु है हरि भगति में,
ते काटहु गहि टेक।
यह दुख का सन कहौं तुम,
विघन विनासन एक।

४८— सहजहि रवि भगवानु ये,
लखि तम करत विनास।
प्रेम प्रनाम करैं करैं—
छन जन-मन-तम-नास॥

४६— तारक पाँच गकार हैं,
सेव सदा स्रुति मेव।
गोविंद गीता गायत्री,
गंगापति गुरुदेव ।।

७३— कृष्ण जन्म वृष चंद्र धुज,
श्रुति रवि सर बुध जानि।
छठे सुक्र सनि राहु नव,
कुज गुरु औ सिव मानि ।।

१२२— सीस भाल स्रुति नासिका,
ग्रीवा उर कटि बाहु।
मूल पानि अंगुलि चरन,
भूषन रवि अवगाहु ।।

अन्य प्रतियों के निम्नांकित क्रम–संख्याओं वाले छन्द इस प्रति में नहीं हैं—

२१, २३ से २६, २६, ३१, ३६, ४०, ४३, ४४, ४७, ५०, ५३, ५६ से ५८, ६० से ६२, ६४, ६५, ६७ से ८६, ८८ से १०८, ११०, १११, १५४, १७६, १७७, १७६, १८४, १८६, १८८, १६१ से २०३, २१२ तथा २१३ ।

इस प्रकार भरतपुर वाली प्रति में ५ नए छन्द हैं। 'क', 'ख' 'घ' तथा 'ङ' प्रतियों के ८८ छन्द नहीं है। इस 'ग' प्रति के अन्त में कोई पुष्पिका नहीं दी गई है, बल्कि उसके पश्चात +सूरति मिश्र की ही दो अन्य रचनाएँ रामचरित और कृष्णचरित संकलित है। कृष्णचरित के पश्चात एक पुष्पिका दी गई है, जो इस प्रकार है :—

"श्री कृष्णायनमः। इति श्री भक्तिविनोद रामकृष्णचरित्र सूरत कवि कृत सम्पूर्ण शुभमस्तु। श्री।"

जिस गुटका में भक्तिविनोद संकलित है उसकी अन्तिम पुस्तक-संख्या १०७ पर 'नवलरसचन्द्रोदय' है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री मन्महाराज जदुकुलवंसावतंस ब्रजेन्द्रनंद नृप नवलसिंघ विनोदार्थे सोभ कवि विरचिते नवलचन्द्रोदये हावादि भेद कथनं नाम सप्त-मोल्लासः। शुभमस्तु।"

इस प्रकार गुटका की अन्तिम पुस्तक की पुष्पिका में भी लिपि-काल या रचना-काल नहीं दिया गया है। इस पुस्तक के आरम्भ में राजा बदन सिंह का उल्लेख किया गया है। गुटका के आरम्भ में महाराज रामसिंह कृत "जुगल विलास" "घनाक्षरी" तथा "रससिरोमनि" नामक तीन ग्रन्थ संकलित हैं। इस प्रकार भरतपुर के तीन राजाओं बदनसिंह, नवलसिंह एवं रामसिंह से सम्बन्धित पुस्तकों के बीच में संकलित यह प्रति अप्रामाणिक तो नहीं मानी जा सकती। इसकी लिपि तथा कागज से भी इसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता असंदिग्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रतिलिपि में जो छद संकलित हैं वे ही आरम्भ में भक्तिविनोद के नाम से कवि ने लिखे थे। बाद में उसने भक्ति-सम्बन्धी वे छन्द लिखे जो जोधपुर, बीकानेर, करहल एवं उदयपुर वाली प्रतियों में मिलते हैं। ये छंद विभिन्न प्रसंगों के क्रम में स्थान पाते गए। इसलिए ग्रन्थ की छंद-संख्या का क्रम तो बदल गया, किन्तु प्रसंगान्तर नहीं आया। शिव और शक्ति सम्बन्धी लगभग सभी छंद भरतपुर की प्रति में नहीं मिलते, किन्तु अन्य सब प्रतियों में मिलते हैं। इस प्रति की लिपि करहल की प्रति को छोड़ शेष सब प्रतियों की तुलना में अधिक शुद्ध है तथा कोई चरण छूटा भी नहीं है जबकि शेष तीन प्रतियों में कहीं-कहीं शब्द ही नहीं, चरण भी छूट गए है। इन नई बातों के होते हुए भी लिपि-काल के अभाव में यह अनुमान लगाना कठिन है कि यह प्रति कितनी प्राचीन है।

(घ) बीकानेर की प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा-बीकानेर के संग्रहालय में क्रमाङ्क ११७७५ संग्रहांक ६७८८ पर संग्रहीत है। इसकी पृष्ठ-संख्या ६३ से ९२ तक है तथा अन्त में निम्नांकित पुष्पिका दी गई है—

"इति श्री भक्तिविनोद सूरति मिश्र विरचिते समय-समय के कवित्त वर्नन संपूर्ण। लिखत सित्रचन्द नागौर मधे लिछमीधर विद्याधर गदाधर पठनार्थं शुभं भवतु। संवत् १८३९ रा जेठ दुतीक सुद ८।"

इस प्रति की छंद-संख्या उदयपुर पाली प्रति की छंद-संख्या से मिलती है। कागज तथा लिपि दोनों से इसकी प्राचीनता तथा प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

(ङ) जोधपुर की प्रति—

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के प्रधान कार्यालय जोधपुर में संरक्षित है। इसका ग्रन्थाङ्क ४०१९७ है। पुष्पिका में लिपिकाल १९१९

वि० दिया गया है। इस प्रति के कई पृष्ठ दीमक ने खण्डित कर दिए हैं, जिससे पूर्ण पाठ शुद्ध नहीं रह गया है। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं भक्तिविनोद ग्रन्थ समाप्तं। संवत् १९१९ मगसिर विद ॥८॥ भृगुवासरे लिखेतमिदं पुस्तकं चौवीसा नंदरामेण।"

इस प्रति की छंद-संख्या उदयपुर करहल तथा बीकानेर की प्रतियों से मिलती है। छंदों के भीतर चरणान्त में विराम चिह्न न होने से इस प्रति का पाठ उदयपुर की प्रति के समान सुवाच्य नहीं है। लिपिकार ने भी अनेक शब्दों को अशुद्ध रूप में लिखा है, तथापि प्रामाणिकता और प्राचीनता की दृष्टि से इस प्रति का पर्याप्त महत्त्व है।

प्राचीनतम प्रामाणिक प्रति

'भक्तिविनोद' की पूर्वोक्त ५ प्रतियों में भरतपुर की प्रति में सबसे कम छंद है। सभी प्रतियों का आरम्भ एवं अन्त समान है। इसमें से किसी भी प्रति को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, किन्तु जहाँ तक प्राचीनतम प्रति का प्रश्न है, भरतपुर वाली प्रति सबसे प्राचीन प्रतीत होती है। उसके पश्चात् लिपिकाल की दृष्टि से बीकानेर की प्रति का स्थान है। किन्तु वह अधिक स्पष्ट नहीं है। प्राचीनता की दृष्टि से तीसरा स्थान उदयपुर की प्रति को दिया जा सकता है। इसके पश्चात् हम करहल तथा जोधपुर की प्रतियों को रख सकते हैं। इनमें जोधपुर की प्रति कीटविद्ध होने से अस्पष्ट हो गई है। केवल उदयपुर एवं करहल की प्रतियाँ ही अधिक स्पष्ट हैं। हमने सब प्रतियों को मिलाकर प्रामाणिक पाठ सम्पादित किया है। उदयपुर एवं करहल की प्रतियाँ उस पाठ का मूल आधार रही हैं। वह सम्पादित पाठ सूरति मिश्र ग्रन्थावली भाग १ "भक्तिविनोद" के नाम से १९७१ में प्रकाशित हो चुका है।

२—नख-सिख

इस पुस्तक की दो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। प्रथम 'क' प्रति करहल जिला मैनपुरी के निवासी पं० बाबूराम तिवारी के घर उनके अनुज पं० पुत्तूलाल तिवारी से प्राप्त हुई है तथा द्वितीय 'ख' प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से प्राप्त हुई है।

(क) करहल वाली प्रति

इस प्रति में ४१ छंद हैं। कागज अधिक पुराना नहीं है और लिपि भी सुवाच्य है। अन्त में जो पुष्पिका दी गई है, उससे इसका लिपि-काल

१९७५ वि० निश्चित होता है। इसका लिपि-कर्त्ता सीताराम नामक व्यक्ति है। प्रति का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—"श्री गणेशायमः। श्री गोपी-वल्लभायनमः। अथ नखसिख वर्णन।"

अन्त में यह पुस्पिका दी गई है—"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं नखसिख बरननं सम्पूरनं। लिखितं सीतारामेण भाद्रमासे शुक्लपक्षे द्वुतिया संवत् १९७५ वि० ।।श्री।। शुभम् ।।"

(ख) बीकानेर की प्रति

यह प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में ग्रन्थ-संख्या ७३८९ पर सुरक्षित है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री सूरत कवि कृत नख-सिख वर्णन।"

इस प्रति में लिपि-काल नहीं दिया है, न लिपि-कर्त्ता का ही नामोल्लेख है।

३—रसगाहकचन्द्रिका

'रसगाहकचन्द्रिका' की एक प्रति प्राप्त हुई है। यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य-संस्थान संग्रहालय में ग्रन्थाङ्क ३८ पर सुरक्षित है। इस प्रति की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

"रसिकप्रियाटीकाया अनुरस वर्णनं नाम षोडशो विलास ।।१६।। ग्रन्थ संपूर्ण ।। समाप्तं ।। संवत् १८६२ ।। मिति मार्गसिर सुदि १४ ।।"

प्रति की लिपि तथा कागज दोनों से उसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है।

४—रसरत्न और उसकी टीका

इस पुस्तक की निम्नांकित प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

(क) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर शाखा कार्यालय से प्राप्त हुई है। इसका ग्रन्थांक ३९९–२२२० है। भक्तिविनोद वाले गुटका में पत्र १२० से १४७ तक यह पुस्तक मिलती है। इस प्रति में मूल रसरत्न के साथ ब्रजभाषा गद्य में उसकी टीका भी है। इसकी पुष्पिका से प्रकट है कि यह प्रतिलिपि संवत् १८७८ में दयाराम ज्योतिषी द्वारा उदयपुर के महाराज-कुमार श्री जवानसिंह के लिए की गई थी। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका संपूरनं लिपि है पठनार्थं महाराजकुमार श्री श्री श्री श्री जवांनसिंह जी चीरंजीव रहज्यौ लिषितं जोतसी दयारामेंण श्रीरस्तु ।। संवत् १८७८ फागुनवद ८ गुरुवारे श्री श्री श्री श्री ।।"

(ख) उदयपुर की संस्थान वाली प्रथम प्रति

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान-संग्रहालय में 'रसरत्न' की दो प्रतियाँ मिलती हैं। प्रथम प्रति पूर्ण है एवं उसमें मूल के साथ टीका भी है। उसकी ग्रन्थ-संख्या २१५ है। इस प्रति के अन्त में दी गई पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका सम्पूर्ण संवत् १९२७ मार्गसिर विद ७ भोमे लिखितं ब्राह्मण दसोरा कोटेस्वर उदयपुर मध्ये।"

इस पुष्पिका के पश्चात् तीन छन्द दिये गये हैं जो लिपिकर्त्ता ने जोड़े हैं और अन्त में फिर लिखा है—

"या पुस्तक राव बखतावर जी की।
पठित चिरंजीव माधवसिंह जी।।
श्रीरस्तु । शुभं भवतु ।।"

इस पुष्पिका में सिद्ध है कि यह प्रति माधवसिंह के पठनार्थ राव बखतावर ने कोटेस्वर दशोरा से उदयपुर में लिखाई थी। पुस्तक की लिपि पर्याप्त अशुद्ध है तथा सुवाच्य भी नहीं है।

(ग) बीकानेर की प्रति

यह प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर में उपलब्ध है। इसमें ग्रन्थाङ्क तथा पुष्पिका नहीं है। कागज तथा लिपि से यह प्रति अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होती।

(घ) उदयपुर की संस्थान वाली द्वितीय प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य संस्थान-संग्रहालय में क्रम-संख्या १२२ पर सुरक्षित है। यह प्रति अपूर्ण है, क्योंकि इनमें पत्र-संख्या १५, १६, १७, २६, २८, २९ तथा ३० नहीं हैं। इसका कागज पुराना है। यह 'ख' प्रति से पूर्व लिखित प्रतीत होती है, किन्तु प्रतिष्ठान की प्रति से अधिक प्राचीन नहीं है। पुष्पिका के अभाव में इसके लिपि-काल का पता लगा सकना असंभव है।

(ङ) जोधपुर की प्रतियाँ

पूर्वोक्त प्रतियों के अतिरिक्त दो प्रतियाँ ग्रथांक १३७७६ (८) तथा २०४४९ (१) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर-संग्रहालय में भी सुरक्षित हैं। इन दोनों प्रतियों का लिपि-काल स्पष्ट नहीं है। कागज तथा लिपि से भी ये दोनों प्रतियाँ 'क' प्रति से अधिक प्राचीन प्रतीत नहीं होती।

(च) **करहल की प्रति**—यह प्रति करहल (मैनपुरी) के पण्डित बाबूराम तिवारी के घर प्राप्त हुई है। इसका कागज बाँसी तथा लिपि प्राचीन है। इसमें 'क' प्रति के समान पूर्ण टीका तो मिलती है साथ ही इसमें कवि-परिचय सम्बन्धी ८ दोहे भी अन्त में मिलते हैं। जो अन्य प्रतियों में नहीं है लिपि-कर्त्ता का नाम 'इन्दुमणि' उल्लिखित है। इन्हीं इन्दुमणि द्वारा लिखित कविप्रिया टीका भी मिली है जिसका परिचय आगे दिया गया है।

प्राचीन एवं शुद्ध प्रति

पूर्वोक्त सभी प्रतियों में प्राचीनतम, शुद्ध, सुवाच्य तथा अधिक प्रामाणिक 'क' प्रति ही है जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा-संग्रहालय उदयपुर में उपलब्ध है और जिसका अधिकांश पाठ करहल वाली प्रति से भी मिलता है।

५—जोरावरप्रकाश

इसकी ६ प्रतियाँ उदयपुर, भरतपुर, इलाहाबाद तथा बीकानेर में उपलब्ध हैं।

(क) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली प्रथम प्रति

यह प्रति प्रतिष्ठान के उदयपुर-संग्रहालय में ग्रन्थाङ्क ६५५–२७३५ पर सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"।। सम्पूर्णः ।। संवत् १८७३ रा मिति ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ३ चन्द्रवासरे लिखितं पंचौली भुवानीराम की ग्रन्थ संख्या उन्मान ३० वाँ।"

इसके पश्चात् निम्नांकित अंश मिलता है—

"इति श्रीमन्महाराज श्री जोरावरसिंह विरचिते रसिकप्रिया विवरणे जोरावरप्रकासे अनरस वर्नन नाम षोडशः विलासः। इति श्री कवि केसौदास कृत्वा ग्रन्थ रसिकप्रिया समाप्तः ।।१।। श्री श्री ।। पोथी राइ भुवान की लिखी भुवानीदास ।। वरण मात्रा चूक जौ कवि कीज्यौ सररास ।।१।। शुभमस्तु ।।"

इस प्रकार यह संवत् १८७३ की प्रतिलिपि सिद्ध होती है।

(ख) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली द्वितीय प्रति

यह प्रति प्रतिष्ठान में ग्रन्थ-संख्या ८३०–२६४० पर सुरक्षित है। इसकी पत्र-संख्या १ से १३५ तक है। आकार ३२·५ × २०·५ से० मी० है। प्रथम पत्र दो बार आया है। इसमें तीन चित्र भी हैं। लिपि-कर्त्ता दुर्लभराम दशोरा तथा लिपि-स्थान उदयपुर है। लिपि-काल १९२९ वि० दिया गया है। पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री मन्महाराजाधिराज श्री जोरावरसिंह विरचिते रसिकप्रिया टीका विवरणे जोरावरप्रकाशे रस अनरस वर्णन नाम शोडषो विलासः। संवत् १९२६ रा वर्षे शाके १७९१ प्रवर्तमाने पौष मासे कृष्णपक्षे १३ त्रियोदश्यां गुरुवासरे मिदं पुस्तकं समाप्तं। स्वस्ति श्रीमन्महेन्द्र महाराजाधिराज महाराजा जी श्री श्री श्री शंभूसिंह जी विजय राज्ये मिदं पुस्तकं स्वयं पठनार्थ दुवे राव बगतावर जी लिखितं ब्राह्मण दशोरा दुर्लभराये हस्ताक्षर नग्र उदयपुर मध्ये।"

यह प्रति उदयपुर के महाराजा शंभूसिंह के राज्य-काल में लिखी गई थी, अतः इसकी प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

(ग) भरतपुर वाली प्रति

यह प्रति भरतपुर के जिला पुस्तकालय में गुटका संख्या ४४ (क) में सुरक्षित है। इसमें केवल ६३ पत्र हैं। यह प्रति अपूर्ण है तथा कागज एवं लिपि से भी यह अधिक प्राचीन सिद्ध नहीं होती।

(घ) उदयपुर की संस्थान वाली प्रथम प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान में उपलब्ध है। इसका ग्रन्थांक २६० है। पाण्डुलिपि का आकार ४½" × ५½" है। ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री कुंजविहारी जी सहाय। अथ सूरति कृति रसिकप्रिया की टीका लिख्यते।"

कवित्त—पूजि मन बाकौं आदि मानें जग ताकौं,
नर धाइ नेंक ताकों सुख लहें सिद्ध गति कौं।
परम दयाल बड़े पूरन कृपाल करें,
छिन में निहाल दैकें आनन्द सु अति कौं।
चरन सरनि जाकी भरत मनोरथनि,
सूरति भवन तीन्यौं इहै मतौ मति कौं।
हेत के सुखासन कौं बुद्धि के प्रकासन कौं,
त्रिघन विनासन कौं नाम गणपति कौ॥

अन्त इस प्रकार है—

"जोरावरपरकास कौं, पढ़ै सुनै चितलाय।
बुद्धि प्रकास अरु भक्ति निज, ताहि देंहि हरि राय।

इति श्रीमन्महाराज श्री जोरावरसिंह विरचिते रसिकप्रिया विवरणे जोरावरप्रकासे अनरस वर्नन नाम षोडशो विलास । श्रीरामजी ।"

पत्र १६६ के पश्चात् लिपि बदल गई है । पुस्तक में कुल २४३ पत्र हैं । कागज पुराना तथा देशी है एवं हस्त-लिपि से भी प्रति की प्राचीनता सिद्ध है, तथापि लिपि-काल का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है ।

(ङ) संस्थान वाली द्वितीय प्रति

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान में यह प्रति उपलब्ध है । इसकी ग्रन्थ-संख्या ३१ है । इसका आरम्भ—"श्री गणेशायनमः । अथ जोरावरप्रकास लिख्यते ।"—पंक्तियों से हुआ है तथा तत्पश्चात् मंगलाचरण का पूर्वोल्लिखित कवित्त है । अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है —

"इति श्री मन्महाराज श्री जोरावरसिंह विरचिते श्री रसिकप्रियाया विवर्णे जोरावरप्रकासे रस-अनरस वर्नन नाम सोडसो प्रभाव ।१६।

इति श्री रसिकप्रिया टीका जोरावरप्रकास कवि सूरति कृत संपूर्ण । समाप्तं । शुभमस्तु । श्रीरस्तु । कल्याणमस्तु । संवत् १६१६ का साल्ये १७ सै ८६ का आषाढ शुक्लपक्ष ४ भौम वासरे लिखितं ब्रह्मन् फतेराम गौत्र सांडल रूप खण्डेलवाल ।।" किन्तु कागज और लिपि दोनों से ही यह प्रति १६१६ वि० के बाद लिखी गई प्रतीत होती है ।

(च) संस्थान वाली तृतीय प्रति

यह प्रति भी राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य संस्थान में सुरक्षित है । इसका क्रमांक ३६४ है । इसका आकार १५"×६" तथा कागज देशी एवं लिपि सुवाच्य है । इसका आरम्भ "श्रीगणेशायनमः । अथ ग्रन्थ आरम्यते ।"—लिखकर केशवदास कृत मंगलाचरण से किया गया है । इस प्रति में राजा के वंश से सम्बन्धित सूरति मिश्र कृत वे २१ छंद मंगलाचरण से पहले नहीं दिए गए, जो अन्य प्रतियों में मिलते हैं । अन्त में इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"लिखितं जोसी वनीरामेण राव कवरजी श्री बुवजी वाचनार्थं संवत् १६१७ रा श्रावणवद १३ ।"

इस प्रकार यह १६१७ में लिपिबद्ध की गई है । इसमें १५"×६" आकार के १५८ पत्र हैं ।

(छ) संस्थान वाली चतुर्थ प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य-संस्थान के क्रमाङ्क १८७ पर संग्रहीत है । इसका आरम्भ इस प्रकार है—"श्रीगणेशायनमः । अथ टीका

जोरावरप्रकाश प्रारम्भः।" तत्पश्चात् सूरति मिश्र कृत मंगलाचरण है और जोरावरसिंह के वंश का परिचय २१ दोहों तक चला है। इसका हस्तलेख बहुत सुन्दर तथा सु-स्पष्ट है। इसमें १५"×१०" आकार के १३२ पत्र हैं। अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है—

"संवत् १९२६ वर्षे शाके प्रवर्तमान्ये। पौष कृष्णा ९ नवम्यां। चन्द्र-वासरे। मिदं पुस्तकं समाप्तः। स्वास्ति श्री महि महेन्द्र माहाराजाधिराज महाराजा श्री श्री १०८ श्री श्री श्री श्री शंभूसिंह जी विजय राज्ये। तत् शुभचिंतक शेवागीरं राव श्री बगतावरसिंह जी चिरंजीव माधवसिंह जी पठनार्थं। लिखितं ब्राह्मण दशोरा कृष्णलालेन हस्ताक्षरं। नग्र श्री उदैपुर मध्ये वास्तव्यं। श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु।"

इससे सिद्ध है कि यह प्रतिलिपि संवत् १९२६ वि० में कृष्णलाल दशोरा ने माधवसिंह के पठनार्थ तैयार की थी।

(ज) इलाहाबाद वाली प्रथम प्रति

हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद के संग्रहालय में यह प्रति संग्रहीत है। इसमें १४४ पत्र हैं। आकार १०·८"× ७·५" है इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"।। श्री गणेशायनमः। अथ जोरावर प्रकास लिख्यते। कवित्त—

पूजि मन वाकौं आदि मानै जग जाकौं
नर ध्याइ नैंकु ताकौं सु लहै सिद्धि गति कौं।

परम दयाल बड़े पूरन कृपाल करैं
छिन निज निहाल दैकैं आनँद सु अति कौं।

चरन सरन जाकी भरत मनोरथन
सूरत भवन-तीनौं यहै मतौ मति कौं।

हेतु है सुरवासन कौ बुद्धि के प्रकासन कौ
विघन विनासन कौ नाम गणपति कौ ।।१।।'

अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है—

"दोहा— जोरावर परकास कौं, पढ़ै गुनैं चित लाइ।
बुधि प्रकास अरु भक्त निज, ताहि दैहिं हरि राइ।।"

इति श्री मन्महाराज श्री जोरावर परकासे जोरावरसिंह पिरचिते रसिकप्रिया विवर्णे अनरस वर्णनं नाम षोड्सो विलासः ॥१६॥

शुभमस्तु संवत् १६१० रा वैसाख सुदि द्वादस्यां गुरूवासरे।
याद्दशं पुस्तकं द्दष्टा ताद्दशं लिखित मया।
यदि शुद्धमशुद्धंवा मम दोषो न किंचन ॥"

इस प्रकार यह प्रति १६१० वि० में लिखी गई है। प्राप्त विवरण से पता चलता है कि यह प्रति बूँदी (राजस्थान) के राव मुकुन्द सिंह से सम्मेलन को भेंट में प्राप्त हुई थी। यह प्रति बहुत स्पष्ट तथा सुवाच्य है।

(झ) इलाहबाद वाली द्वितीय प्रति—

यह प्रति भी सम्मेलन के संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें १७५ पत्र हैं तथा आकार ८"×५·५" है। इसका लिपिकाल अन्त में १६१४ वि० दिया गया है:—

"इति १६१४ मिति वैशाख वदि ६ रविवार लिखितं विक्रम नगर मध्ये।"

इससे यह प्रकट है कि यह प्रतिलिपि वीकानेर में की गई थी। प्राप्त विवरण से पता चलता है कि यह प्रति जोधपुर के श्री लालचन्द दाधीच ने सम्मेलन को भेंट की थी। यह प्रति अधिक स्पष्ट नहीं है।

६–रामचरित

यह पुस्तक भरतपुर के जिला पुस्तकालय से प्राप्त हुई है। जिस गुटका सं० १०३–१०७ में भक्ति विनोद संकलित है, उसी में भक्तिविनोद के पश्चात 'रामचरित' संकलित है। इसका क्रमांक भी १०६ ही है। अतः प्रतीत होता है कि संकलन कर्त्ता ने इस पुस्तक को 'भक्ति-विनोद' का ही अंश मान लिया है, जबकि यह १२ छन्दों की स्वतन्त्र लघु रचना है। इस पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है:—

"अथ श्री रामचरित वर्णनं लिख्यते

श्री रामचरित्र सुनौ चित लाई।
भव तारन लीला सुखदाई।
श्री अवधपुरी जहँ परम समाजा।
राज करैं श्री दशरथ राजा॥

पुस्तक का अन्तिम अंश यह है:—

"सुखदाइ आइ अनंद दीने पुत्र मित्र समाज कौं।
यौं नित अजोध्या में विराजत अवतरे जन काज कौं।
श्रीरामजू के चरित इहिं विधि सेस गंगापति रटैं।
'सूरति' सुकवि सो सुनत गावत कोटि कलि-कलमष कटैं ।।१२।।

श्रीरामचरित संपूर्ण ।"

यह रचना 'भक्तिविनोद' की प्रति वाले बाँसी कागज पर उसी लिपि में लिखी गई है।

७—श्रीकृष्णचरित

भरतपुर के जिला पुस्तकालय में भक्तिविनोद वाले गुटका संख्या १०३—१०७ में संख्या १०६ पर रामचरित के पश्चात इस रचना को संकलित किया गया है। इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है :—

"अथ श्रीकृष्णचरित लिख्यते ।

श्री कृष्णचरित्र सदा सुखदाई।
जिहि गावत सुर-नर-मुनि राई ।।
मथुरा प्रगटे पूरन कामा।
श्री वसुदेव-देवकी-धामा ।।१।।"

पुस्तक का अन्त इस प्रकार हुआ है—

"ऐसे नित लीला श्रुति गावैं।
अरु ब्रह्मादिक पार न पावैं।
सदा सनातन रूप विराजैं।
लीला करत भक्त हित काजैं ।।११।।

लीला करत नित भक्त काजैं परम अद्भुत साज सों।
प्रभु नित्य वृंदावन विराजैं जुगल रूप समाज सों।
ए चरित सेस दिनेस श्री गंगेस हिय अभिराम. हैं।
'सूरति' सुकवि श्री भागवत कौ ध्यान यह सुखधाम है ।।१२।।

श्रीकृष्णायनमः । इति श्री भक्तिविनोद राम-कृष्ण-चरित्र सूरति मि
कृतं सम्पूर्ण । शुभमस्तु । श्री ।।"

इस प्रकार इस प्रति में रचना-काल या लिपि–काल का उल्लेख नहीं है ।

–रास-लीला

(क) **प्रथम प्रति**—यह पुस्तक अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में सुरक्षित है । वहाँ इसकी दो प्रतियाँ उपलब्ध हैं । प्रथम प्रति का क्रमांक १२१ है । इस प्रति में दो पत्र हैं । आरम्भ का एक पत्र नहीं है, अतः यह प्रति अपूर्ण है ।

(ख) **द्वितीय प्रति**—यह प्रति भी उक्त पुस्तकालय में ही क्रमाङ्क १२२ पर संकलित है । इस प्रति में तीन पत्र हैं । यह प्रति १८३४ वि० की प्रतिलिपि है, जैसा कि इसके साथ संकलित 'दानलीला' के अन्त की पुष्पिका से स्पष्ट है । कागज बाँसी तथा लिपि प्राचीन है, जिनसे इसकी प्रामाणिकता स्पष्ट है ।

९–दानलीला

(क) **प्रथम प्रति**—'दानलीला' की यह प्रति अनूप संस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में 'रासलीला' की प्रति सं० १२१ के साथ संकलित है । इसमें २ पत्र हैं । अन्त का एक पृष्ट नहीं है । अतः यह खण्डित प्रति है ।

(ख) यह प्रति भी उक्त पुस्तकालय में ही 'रासलीला' की प्रति संख्या १२२ के साथ संकलित है । इसमें ३ पृष्ठ हैं । अन्त में यह पुष्पिका इस प्रकार है:—

"इति श्री दानलीला मिश्र सूरति जी कृत सम्पूर्ण संवत १८३४ फागुन सुदी १३ बुधवारं ।"

इस पुष्पिका से इसका लिपिकाल १८३४ सिद्ध है ।

१०—अलंकारमाला

इस पुस्तक की ५ प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका परिचय इस प्रकार है:—

(क) **उदयपुर की प्रति**—यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में उपलब्ध है । इसका ग्रंथाङ्क ६६२ है । पत्रों का आकार

१६ से० मी० × १४ से० मी० है। रचना का आरम्भ पत्र ५ से हुआ है और पत्र ४८ अ पर समाप्त हुई है। प्रति अपूर्ण है। जिस गुटका में यह संकलित है, उसमें पत्र ७१ पर अन्य रचना के साथ लिपि-काल १८८५ वि० का उल्लेख है। अतः अनुमानतः १८८५ वि० में ही यह प्रति भी लिखी गई होगी। इस प्रति का कागज देशी तथा हस्तलिपि प्राचीन है। प्रति का आरम्भ इस प्रकार है :—

"श्री गणेशायनमः। अथ अलंकारमाला दूहा लिखते।

तड घन वपु घन तड वसन, भाल लाल पख मोर।
ब्रज जीवन सूरत सुखद, जय जय जुगल किसोर ॥१॥
अलंकार कवितान के, सबन समझिवे हेत।
रच्यौ ग्रन्थ 'सूरत' सु यह, लक्षन लक्ष निकेत ॥२॥"

और निम्नांकित अंश के साथ प्रति अपूर्ण छोड़ दी गई है—

"श्रोती उपमानोपमेय लुप्ता में व्यतिरेकः

लखीं डसत सी भय हरन
पै अद्भुत अँग लीन।

प्रश्न—यहाँ 'डसन सी' यह धरम साथ वाचक है यातें श्रोती कही। × ×

तहाँ उत्तर—इहाँ डसन केवल धरम है × × ×
धर्म चलन यहु नहिं कहि सकियै ॥
यातै दूहा प्रस्ताविक।"

इसके पश्चात अपभ्रंश और डिंगल के छन्द हैं, जो अन्य कवियों के हैं।

(ख) **जोधपुर की प्रति**—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में यह प्रति ग्रन्थाङ्क १८७१७ पर उपलब्ध है। यह प्रति खंडित है, क्योंकि इसके ४ पत्र प्राप्त नहीं हैं। पुष्पिका से इसका लिपि-काल १८६० वि० सिद्ध होता है।

(ग) **बीकानेर की प्रथम प्रति**—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की बीकानेर शाखा में अलंकारमाला की तीन प्रतियाँ उपलब्ध हैं। प्रथम प्रति का ग्रन्थाङ्क ६९ है। कागज देशी तथा लिपि स्पष्ट है। इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है :—

"।। अथ अलंकारमाला लिखते ।

तडि घन वपु घन तडि बसन
भाल लाल पख मोर।
ब्रज जीवन सूरत सुखद
जय जय जुगल किसोर ।।१।।
अलंकार कबितान के
सबन समझबे हेत।
रच्यौ ग्रन्थ सूरत सु यह
लक्षन लक्ष्य निकेत ।।२।।"

प्रति का अन्तिम अंश इस प्रकार है :—

"अलंकार माला करी, सूरत मन सुखदाय।
वरनत चूक परै लखौ, लीजो सुकवि बनाय ।।
सूरत मिश्र कनौजिया, नगर आगरै वास।
रच्यौ ग्रन्थ तिह भूषननि, वलित विवेक विलास ।।
संवत सत्रह सै वरष, छासठ सावन मास।
सुर गुर सुद एकादशी, कीनौ ग्रन्थ प्रकास ।।
अलंकार माला जु यह, पढ़ै गुनै चितलाय।
बुद्धि सभा परवीनता, ताहि देहि हरिराय ।।
इति श्री अलंकारमाला सम्पूर्ण। श्री। श्रीरस्तु ।।"

इस प्रकार इस प्रति में रचना-काल तो उल्लिखित है, किन्तु लिपि-काल नहीं दिया गया है।

(घ) **इलाहाबाद की प्रति**—हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद के संग्रहालय में भी 'अलंकारमाला' की एक प्रति है, जिसकी संग्रह-संख्या १४५८–२५७३ है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमें केवल १७ पृष्ठ हैं। लिपि भी अधिक स्पष्ट नहीं है। लिपि-काल का इसमें भी उल्लेख नहीं है।

११. काव्य-सिद्धान्त

इस ग्रन्थ की निम्नांकित प्रतियाँ उपलब्ध हैं :—

(क) उदयपुर की प्रथम प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित है। इसका ग्रन्थाङ्क ६१२-२७२१ है। इस प्रति में ३१ से ४७ तक कुल

१७ पत्र हैं। पत्र का आकार १६×१६.५ से. मी. है। कागज देशी तथा लिपि सुवाच्य है। प्रति का आरंभ इस प्रकार हुआ है :—

"श्री गणेशायनमः। श्री गणेशायनमः ।।

दूहा

श्री वृन्दावन मधि लसैं, नित वय नवलकिसोर।
गौर स्याम अभिराम तन, दंपति संपति मोर।"

अंत का अंश निम्नांकित है :—

"सूरति सुकवि सुनौ यह,
फुरै जु कविता रीति।
तौ प्रभु गुन ही वरनियै,
जौ हिय सब सुख प्रीति ।।५८।।

इति श्री सूरत मिश्र कृत काव्य-सिद्धान्त सम्पूर्णम् ।। श्रीरस्तु ।।
पठनार्थ दधवाड़िया कंवर जी श्री सावलदास जी।

जुठियारा रामदान जी लालस री पुस्तक सूं बापजी श्री कनीराम जी लषी तिण ख्यात सुं ये ग्रन्थ लिख्या गया।"

इस प्रकार यह ग्रन्थ जूठिया ग्राम के कनीराम की ख्यात (पुस्तक) से लिखा गया है। लिपि-काल का उल्लेख नहीं है। दधिवाड़िया श्यामलदास के पढ़ने के लिए यह प्रति लिखी गई थी। श्यामलदास दधिवाड़िया का निर्वाण १६३५ वि० में हुआ। अतः यह प्रति १६३५ वि० से कुछ समय पूर्व ही लिखी गई होगी।

(ख) उदयपुर की द्वितीय प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य-संस्थान में क्रमाङ्क १७६ पर संग्रहीत है। इसका लिपि-काल १६३२ वि० है। इसमें संख्या २७ से ४० तक १४ पत्र हैं। यह प्रति अशुद्ध तथा खण्डित है। कागज भी अधिक पुराना नहीं है। आरंभ इस प्रकार हुआ है :—
"श्री गणेशायनमः अथ सुरत मीस्र कृतः काव्य सदांत लीखतेः दुहाः ।।"

(ग) उदयपुर की तृतीय प्रति

यह प्रति भी उक्त संस्थान में क्रमाङ्क ३६७ पर संग्रहीत है। इसका लिपि-काल १६१३ वि० है। यह प्रति अधिक स्पष्ट है तथा कागज भी पुराना है। इसमें १६ पत्र हैं।

(घ) **जोधपुर की प्रथम प्रति**

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में क्रमाङ्क ११२६ पर यह प्रति सुरक्षित है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमें केवल ६ पत्र हैं। लिपिकाल का उल्लेख नहीं है, किन्तु कागज आदि के आधार पर अनुमान है कि यह प्रति १६वीं शताब्दी विक्रमी में लिखी गई होगी।

(ङ) **जोधपुर की द्वितीय प्रति**

यह प्रति भी जोधपुर के उक्त प्रतिष्ठान में ही सुरक्षित है। इसका क्रमाङ्क २२६३ है। इसमें १६ पत्र हैं। यह प्रति कहीं-कहीं अस्पष्ट है। इसका लिपिकाल १६२५ वि० है। इसकी प्रतिलिपि कृष्णगढ़ में की गई थी। इसमें रचना-काल १७६८ वि० उल्लिखित है।

इन प्रतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रतियाँ भी मिलती हैं, किन्तु वे विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं।

१२—छंदसार पिंगल

इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(क) **उदयपुर की प्रति**

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में उपलब्ध है। इसकी ग्रन्थ-संख्या ६११ (२७२० – २) है। गुटका में इसकी पत्र-संख्या १ से ३१ तक है। कागज देशी और पुराना है तथा आकार १६ × १६·५ से० मी० है। इस प्रति का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री सरस्वत्यैनमः। श्री गणेशायनमः। अथ छन्दसार पिंगल सूरति मिश्र कृत लिख्यते।

सोरठा—कृष्णचरण नित आन,
कहौं सुमति पिंगल कछू।
जिहते छंदह जांन,
प्रभु गुन ता महि बरनिये ॥१॥"

अन्तिम अंश इस प्रकार है—

"बन्ध जौ करिहि तौ, छन्द बन्ध चित लाय।
छन्द बन्ध सब छाँडि कैं, नन्दनन्दन गुन गाय ॥
इति श्री मिश्र सूरत कृत ग्रन्थ छन्दसार सम्पूरणः।"

(ख) जोधपुर की प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर संग्रहालय में ग्रन्थाङ्क ३५६५१ पर संग्रहीत है। लिपिकाल का इसमें भी उल्लेख नहीं है। उदयपुर की प्रति इसकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट है।

१३—कामधेनु-कवित्त

इस ग्रन्थ की एक प्रति करहल-निवासी पण्डित बाबूराम तिवारी के निजी सग्रह में उपलब्ध हुई है। पाण्डुलिपि में ९·५"×५·५" के आकार के ६ पत्र है। कागज देशी तथा लिपि प्राचीन है। ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री गणेशायनमः। श्री पिगलायनमः अथ कामधेनु कवित्त लिख्यते।

धन वपु तडि पटु कमल दृग,
सीस चन्द्रिका मोर।
लाल लाल बनमाल उर,
जय जय नन्दकिसोर ॥

अन्त में यह पुष्पिका दी गई है—

"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं कामधेनु कवित्तं समाप्तं। लिखितं इन्द्रमणिना। श्री श्री श्री।"

इस पुष्पिका में लिपिकर्त्ता ने अपना नाम तो दिया है किन्तु लिपिकाल का उल्लेख नहीं है।

१४—प्रबोधचन्द्रोदय

इस ग्रन्थ की भी मुझे दो प्रतियाँ प्राप्त हुई है। यहाँ दोनों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

(क) शाहपुरा की प्रति

यह प्रति शाहपुरा (राजस्थान) के श्री उम्मेद सार्वजनिक पुस्तकालय में मिली है। इस पुस्तकालय में अनेक अज्ञात ग्रन्थों का राजकीय संग्रहालय है। प्रस्तुत प्रति बस्ता संख्या ३३ में ग्रन्थाङ्क १७५ पर संग्रहीत है। कागज तथा स्याही से प्रति उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमी मे लिखित प्रतीत होती है। इसका आरम्भिक अंश इस प्रकार है—

"श्री गणेशायनमः। अथ प्रबोधचन्द्रोदय भाषा लिख्यते।

दोहा—गुण गणेश गावौ गुणी, सब विधि सुख सरसाइ।
बाढै बुद्धि विवेक बल, महामोह मिटि जाइ ॥१॥

इस प्रति का अन्त इन पंक्तियों से हुआ है—

"जो कोउ याहि सुनै रु सुनावै, सोउ परम गति पावै।
'सूरति' सुकवि धन्य वह जग में, किहु विधि हरिगुन गावै ॥२९३॥"

इति श्री सूरत सुकवि विरचित प्रबोधचन्द्रोदय नाटक भाषा सम्पूर्णम् ॥"

(ख) करहल की प्रति

यह प्रति करहल (मैनपुरी) के निवासी स्वर्गीय पण्डित बाबूराम तिवारी के घर से उपलब्ध हुई है। इसमें कुल १७ पत्र हैं। कागज देशी तथा पुराना है। इसका आरम्भ एवं अन्त 'क' प्रति के समान ही है। इस पाण्डुलिपि की पुष्पिका में लिपि-काल या रचना-काल का उल्लेख नहीं है। पुष्पिका इस प्रकार हैं—

"इति सूरति मिश्र विरचितं प्रबोधचन्द्रोदय भाषा सम्पूर्णम् शुभम्।"

१५—अमरचन्द्रिका

इसकी निम्नांकित प्रतियाँ उपलब्ध हुई है—

(क) उदयपुर वाली संस्थान की प्रति

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान में अमरचन्द्रिका की एक प्रति उपलब्ध हुई हैं। इसका ग्रन्थाङ्क ३७३ है। यह प्रति अपूर्ण है तथा अधिक स्पष्ट भी नहीं है।

(ख) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली प्रति

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर संग्रहालय में अमरचन्द्रिका की एक पूर्ण प्रति उपलब्ध है। इसका ग्रन्थाङ्क २६१ (२०८२) है। इसमें २५ × २६ से० मी० आकार के २०६ पत्र हैं। कागज देशी तथा लिपि पुरानी है। इसके आरम्भ का अंश इस प्रकार है—

"सिद्ध श्री महागणपतयेनमः। श्री गोपीवल्लभायनमः। अथ अमर-चन्द्रिका लिख्यते।

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं, स्याम हरित दुति होइ ॥१॥

टीका—प्रथम मंगलाचरन इहिं, कवि की विनती जाँनि।
प्रगट तु अपनी अधमता, अधिकाई ध्वनि आनि ॥"

अन्त में यह पुष्पिका दी गई है—

"इति श्री अमरचन्द्रिकाया अमर सूरत प्रश्नोत्तरे शान्त रस वर्णनं नाम पंचमो विलास सम्पूर्णम् । संवत् १८११ वर्षे शाके १६७६ रा कारतिग विदि १४ सोम वासरे ।। लिखायतं बाबा जी श्री १०८ खुमाणसिंह जी चिरायुरस्तु । वाचनार्थे ।। लिखतं मेदपाटदेशे उदैपुर नग्रे ।। सहा सिवरूप अग्रवालस्य लेखनीयां ।। श्रीरस्तु ।। अज्ञान दोषान्मतिविभ्रमाद्वायत्किंचित न्यूनं लिखितं मयात्र ।। तत्सर्वमार्यै परिसोधनीयं ।। दोषो न कार्यो खलु लेखकस्य ।।१।। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।। श्री श्री श्री श्री ।।"

इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि यह प्रति संवत् १८११ वि० में उदयपुर में शिवरूप शाह नामक किसी व्यक्ति ने बाबा खुमाणसिंह के पठनार्थ लिखी थी ।

(ग) जोधपुर की प्रति

अमरचन्द्रिका की एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसका ग्रन्थाङ्क ३६६७४ है । इस प्रति में लिपि-काल का उल्लेख नहीं है । अनुमान है कि यह प्रति भी उन्नीसवीं शताब्दी में ही लिखी गई होगी, किन्तु उदयपुर की प्रति के पूर्व लिखी गई प्रतीत नहीं होती ।

१६—कविप्रिया टीका

इस ग्रन्थ की केवल एक प्रति उपलब्ध हुई है । जो दिल्ली विश्व-विद्यालय के हिन्दी-विभाग में प्राध्यापक डॉ० रमानाथ त्रिपाठी के पास है । उन्हें यह प्रति उत्तरप्रदेश के इटावा, बाँदा आदि जिलों में खोज कार्य करते समय प्राप्त हुई थी । इस प्रति में कुल ५६ पत्र हैं और आकार ३३½ × १६½ से० मी० है । कागज देशी तथा लिपि पुरानी है, किन्तु सुवाच्य है । इसके आरम्भ और अन्त के अंश इस प्रकार हैं—

आरम्भ—

"श्री गणेशायनमः । अथ सटीक कविप्रिया मिश्र सूरत कृत ।

सोरठा—गरुडपाल गिरिपाल,
गौरि गिरा गण ग्रहण गुह ।
ए जेहि रूप रसाल,
बंदौं पग तेहि जुगल के ।।१।।"

अन्त—

"संवत् १८४६ शाके १७६४ ।। माघ कृष्णे ४ भौमवासरे लिखितं ।। इदं पुस्तकं ।। इद्रमनिना ।। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।। शुभमस्तु । शुभं भूयात ।। श्रीरामोजयतितरां ।"

इस पुष्पिका से ग्रन्थ का लिपिकाल १८४६ वि० प्रकट होता है, किन्तु रचना-काल का उल्लेख नहीं है। उपर्युक्त पुष्पिका के अनुसार यह प्रति इन्दुमणि नामक किसी व्यक्ति ने लिखी थी।

सूरति मिश्र के नाम से प्रसिद्ध अन्य ग्रन्थ

खोज विवरणों में निम्नांकित ग्रन्थों का रचियता भी सूरत्रि मिश्र को बताया गया है:—

१. श्रृंगारसार
२. सरसरस या रससरस
३. बैतालपचीसी
४. भक्तमाल
५. श्रीनाथविलास
६. रसरत्नमाला

इनमें से केवल श्रृंगारसार, सरसरस, बैतालपचीसी एवं रसरत्नमाला की प्रतियों के विवरण खोज-विवरणों में मिलते हैं, शेष दो पुस्तकों का उल्लेख श्रृंगार-सार के उद्धरणों में मिलता है। हमें इनमें से केवल श्रृंगारसार एवं सरसरस (रससरस) की हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं। अतः पहले उनका परिचय प्रस्तुत करके फिर अन्य कृतियों पर विचार करेंगे।

१. श्रृंगारसार

सूरति मिश्र की रचना के रूप में इसकी केवल एक प्रति आगरा निवासी श्री रामचन्द्र सेनी के घर उपलब्ध हुई है। खोज-विवरण में भी इसी प्रति का उल्लेख है।[1] इस प्रति में ११ × ७ इंच आकार के केवल २४ पत्र हैं। ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार हुआ है :—

---

१. सभा का खोज-विवरण, भाग १५, वर्ष १६३२-३४ ई०, ग्रन्थाक—२१३, पृष्ठ २३८, संस्करण २०११ वि०।

"श्रीगणेशायनमः। अथ श्रृंगारसार लिख्यते।

रिपुपत्नी नायिका—

सुमरित ही हरि छिनकु ही, दीने वसन वढ़ाइ।
सुनि प्रभाव रिपु की तरुनि, सवै गईं मुरझाइ॥

सपत्नी परनारि—

मन भावन आवन कह्यौ, सावन लागत धाम।
विरमायौ वालम सखी, काहूं वैरिन वाम॥"

ग्रन्थ के अन्त में रचित ग्रन्थों के नामों एवं रचना-काल का उल्लेख करके यह पुष्पिका दी गई है:—

"इति श्री सूरति मिश्र विरचिते सिंगारसारे विप्रलंभ वर्णन नाम सप्तमो विलास सम्पूर्ण। शुभ॥"

इस पुष्पिका को प्रमाण मान कर ही खोज-विवरण में 'श्रृंगारसार' को सूरति मिश्र द्वारा रचित स्वतन्त्र ग्रन्थ माना गया है। किन्तु प्रति का आदि से अन्त तक अवलोकन करने एवं अन्तिम परिचय पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'श्रृंगारसार' कवि की कोई स्वतन्त्र कृति नहीं है। २४ पत्रों की इस लघु प्रति में किसी कवि ने अपनी रचनाओं के साथ सूरति मिश्र की कुछ कृतियों के श्रृंगार-विषयक अंशों एवं 'रसरत्न' का भी संकलन कर दिया है। उसने ग्रन्थ परिचय आदि के सभी अंश अपनी ओर से जोड़े हैं।

इस पुस्तक का विषय-वर्णन क्रमानुसार इस प्रकार है—

१. अनुनायिका, देश भेद, यौवनाभिसारिका, अन्य स्नेह दुखिता- एवं अष्टनायिकादि वर्णन।

२. नायक के लक्षण, अनुकूल लक्षण, उदाहरण, शठ-धृष्ट-लक्षण, दोनों के उदाहरण।

३. भाव वर्णन-विभाव का लक्षण, आलम्बन, उद्दीपन, उद्दीपन के संदर्भ में प्रकृति का वर्णन, यथा. चन्दोदय; षटऋतु, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर।

उद्दीपन, स्थायी भाव, सात्विक भाव, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, विवर्ण, हेला—हाव, लीला-हाव, ललित हाव, मद विभ्रम हाव, विहित हाव, विलास हाव, कलकिंचित विछित, विब्बोक, मोट्टायित, कुट्टमित, बोधक, अन्यदपि एवं चेष्टा का वर्णन।

४. सखी वर्णन—रूप-दर्शन, नायक-दूती, शिक्षा, विनय, आदि के उदाहरण, मान, दूती वर्णन, नाइन, मालिन एवं तम्बोलिन के वचन, दूती-भेद (उत्तम मध्यम, अधम) एवं सखी वर्णन ।

५. शृंगार-वर्णन—अनुत्पन्न विप्रलंभ, विप्रलंभान्तर संयोग, मिलन-लक्षण, दर्शन के भेद और उदाहरण, स्वयं दूत-लक्षण और उदाहरण, अनुराग, अवहास-हास, नायक के प्रति नायिका का परिहास, दम्पत्ति से सखी का परिहास, अष्ट रति के भेद, विप्रलंभ शृंगार, पूर्वानुराग, विरह, श्रवण और दर्शन से पूर्वानुराग दश दशा, चिन्ता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मान-भेद, ईर्ष्या का उदाहरण, प्रणय जन्य मध्यम मान, मानोपाय—साम, दान, भेद, प्रणति, उपेक्षा, प्रसंग-विध्वंस आदि । प्रवास विप्रलंभ के लक्षण और उदाहरण, नायिका-विरह, कथन, नायक का विरह ।

६. विरह के प्रसंग में बारह मासा भी दिया गया है ।

७. नायक-नायिका का पत्र-व्यवहार तथा करुण-विरह. वियोग-निर्णय, कार्यान्तिर वियोगाभ्यास, देशान्तर-वियोगाभ्यास, पूर्ण शृंगार का उदाहरण ।

प्रति के अन्त में सूरति मिश्र एवं उनकी कृतियों का परिचय इस प्रकार दिया गया हैं :—

"वरनी रस शृंगार की संछेपहि कछु रीति ।
लखौ चूक सो बनाइयौ, कवि कोविद करि प्रीति ।
नगर आगरौ बसत सो, बाँकी ब्रज की छाँह ।
कालिन्दी कलमष हरनि, सदा बहति जा माँह ।।
श्रुति पुरान कविता सरस, जप तप, नृत्य सुगान ।
जहँ चरचा निसि दिन रहै, अरचा श्री भगवान ।।
भगवत पारायन भये, तहाँ सकल सुख धाम ।
विप्र-कन्त ब्रज कुल कलस, मिश्र सिंघमनि नाम ।
तिनके सुत सूरति सुकवि, कीने ग्रन्थ अनेक ।
परमानंद वर्णन विषै, परी अधकसी टेक ।।
माथे पर राजति सदा, श्रीमद गुरु गनेश ।
भक्ति काव्य की रति लही, लहि जिनके उपदेश ।।

प्रथम कियौ सत कवित में, इक श्रीनाथविलास।
इक ही तुक पर तीन सौ, प्रास नवीन प्रकास।
श्री भागवत पुरान के, तहँ श्री कृष्ण चरित्र।
वरने गोवर्द्धन धरन, लीला लागि विचित्र।।

भक्ति विनोद सुदीनता, प्रभु सो शिक्षा चित्र।
देव, तीर्थ, अरु पर्व के, समै-समै सु कवित्त।।

बहुरि भक्तमाला कही, भक्तिन के जस-नाम।
श्री वल्लभआचार्य के, सेवक के गुन धाम।।

कामधेनु इक कवित में, कढ़त सतवरन छंद।
केवल प्रभु के नाम तहँ, धरे करन आनंद।।

इक नख सिख माधुर्य है, परम मधुरता लीन।
सुनत पढ़त जिहि होत है, पावन परम प्रवीन।।

छंदसार इक ग्रन्थ है, छंद रीति सब आहि।
उदाहरन में प्रभु जसै, यों पवित्र विधि ताहि।।

कीनों कवि सिद्धान्त इक, कवित रीति कौं देखि।
अलंकारमाला विषै, अलंकार सब लेखि।।

इक रसरत्न कीन्हौं वहुरि, चौदह कवित प्रमान।
ग्यारह सै बावन तहाँ, नाइकानि कौ ज्ञान।।

इह इक सार सिगार तहँ, उदाहरण रस रीति।
चारि ग्रन्थ ये लोक-हित, रचे धारि हिय प्रीति।।

कहा कहौं ये ग्रन्थ हू, प्रभु जस अंकित मानि।
ज्यौं व्यंजन बहु लवन तन, पाइ स्वादु मन मानि।।

जिन ग्रन्थन महँ कवित में, आवै हरि कौ नाम।
सो वहु शुभ 'सूरति' सुकवि प्रति पवित्र सुख भाम।।

इस विवरण में दिए गए तथ्य सूरति मिश्र की अन्य रचनाओं में प्राप्त तथ्यों से मेल नहीं खाते। प्रथमतः सूरति मिश्र केवल आगरा ही नहीं रहे थे, अन्यत्र राजाओं के दरबारों में भी उनका जीवन व्यतीत हुआ था। द्वितीय बात यह कि वे केवल कृष्ण की ही भक्ति नहीं करते थे, अन्य देवी-देवताओं

की भक्ति से सम्बन्धित रचनाएँ भी भक्ति-विनोद तथा अन्य पुस्तकों में मिलती हैं। तीसरी महत्व पूर्ण बात यह है कि सूरति मिश्र की रचनाओं का जो काल-क्रम इस विवरण में दिया गया है वह सत्य नहीं है। शृंगार की रचना का समय प्रति में इस प्रकार उल्लिखित है !

"संवत सत्रह सै तहाँ वर्ष पचासी जानि।
भयो ग्रन्थ गुरु पुष्य में, सित असाढ़, श्रय मानि।।"

सूरति मिश्र कृत काव्य-सिद्धान्त (१७६८) रस रत्न टीका (१८००) आदि कृतियाँ १७८५ वि० के पश्चात् लिखी गई थीं। भक्तिविनोद में 'वर्ष-गाँठ' से आगे संकलित छंद भी १७८५ के पश्चात् लिखे गए थे। अतः उत्तर-वर्ती रचनाओं का उल्लेख भी 'शृंगार-सार' को एक अप्रमाणिक रचना सिद्ध करता है। कृति-परिचय में यह संकेत भी है कि सूरति मिश्र ने भक्ति-विषयक रचनाओं के पश्चात् चार ग्रन्थ लोक-हितार्थ लिखे। उन चार ग्रन्थों में शृंगार-सार भी सम्मिलित किया हैं। अतः वह भक्ति-विनोद का उत्तरवर्ती काव्य होना चाहिए, जबकि परिचय में ही उसका रचना-काल १७८५ वि० वताया गया है। साथ ही, लोक-हितार्थ जो ग्रन्थ गिनाए गए है, वे हैं—छंदसार, काव्य, सिद्धान्त, अलंकारमाला, रसरत्न और शृंगार-सार। ये चार वताए गए हैं, जबकि पाँच होते हैं।

इससे भी सिद्ध है कि शृंगार-सार को छोड़ कर शेष चार रीति-ग्रंथ ही सूरति मिश्र की रचनाएँ हैं और शृंगारसार नाम से जो रचना सूरति मिश्र कृत वताई जा रही है, वह अप्रमाणिक है। सभा के खोज-विवरण, संख्या १४ (सन् १९२९-३१) में क्रम संख्या २४० पर भी एक "शृंगारसार" का इस प्रकार उल्लेख है:—

"२४०—शृंगारसार—रचयिता: मुरलीधर मिश्र। कागज—बाँसी, पत्र ४, आकार ७×५ इन्च। पंक्ति १८। परिणाम् ६३। खण्डित। पद्य। प्राप्ति बहुरी चिरंजीलाल जी, भैंरो बाजार, आगरा।

आदि—भाव लछनं।
रस उपजत है भाव ते
भाव सु पाँच प्रकार।
भनि विभाव अनुभाव अरु,
सात्विक चिर संचार।

रस अनुकूल है विकार मन वहै भाव,
अनुभाव जितने विकार मन जानिए ।

विभाव विशेषता है आवन की सौ है भाँति,
आली इक वन दूजो उद्दीपन मानियै ।।

सात्विक हैं आठ स्तम्भ स्वेद रोम स्वरभंग वेपथु,
विवर्ण आँसू प्रलय वखानियै ।

तेतीस हैं संचारी जो स्थाई रति पुष्ट करैं
तब ही सिंगार रस पूरौ पहिचानिये ।।

अन्त—

दोहा— ऐ हो ओरी हाव है, दंपति के संयोग ।
इनकौं कोई कविन नैं, वरन्यौ नारि वियोग ।।४२।।

यह सिंगार रस सार की पोथी रची विचारि ।
भूल्यौ हौंउ जहाँ कहूँ, लीजै सुकवि सुधारि ।।
इति श्री मुरलीधर मिश्र विरचितं शृंगारसार ७४।।
शुभम् भूयाम् ।"[1]

इस विवरण को देखने तथा विषय की ओर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि "शृंगारसार" नामक कृति का मूल रूप मुरलीधर मिश्र की ही रचना है तथा उसी में बाद में सूरति मिश्र की कुछ रचनाओं के अंश एवं रसरत्न जोड़ दिया गया है तथा अन्त में सूरति मिश्र का परिचय भी दे दिया गया है। मिश्र होने के कारण मुरलीधर का सूरति मिश्र वंशीय होना भी सम्भव है और उस स्थिति में शृंगार सार' में सूरति मिश्र की रचनाओं का संग्रह तथा परिचय आदि भी स्वाभाविक ही कहा जाएगा ।

२. सरसरस

इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर सग्रहालय में सुरक्षित हैं। ग्रन्थ संख्या ३८४ सम्वत् १८१९ वि० की प्रतिलिपि

---

१. देखिये, खोज-विवरण, भाग—१४, पृ० ४४९-४५० ।

है तथा ग्रन्थ संख्या ४१७ सम्वत् १८०० की प्रतिलिपि है। दोनों में आरम्भ की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

"श्री गणेशायनमः। श्री सरस्वत्यैनमः। अथ ग्रन्थ 'रस-सरस' लिख्यते।

दोहा— विघन विदारन विरदवर, वारनवदन विकास।
बर देवहु वाढ़ै विरुद, वानी वुद्धि-विलास ॥१॥

छप्पय— × × ×

सन्त सुद्ध रूप सुधि विरद करि विनयदास श्रवननि धरौ।
'रस-सरस' ग्रन्थ चाहत रच्यौ, नवरस मय शिव शिव करौ ॥२॥

दोहा— यह जु सरस रस ग्रंथ तहँ, रचना रची नवीन।
रस नायक अरु नायका, वहुरि किया जु प्रवीन[1] ॥३॥"

इस प्रकार ग्रंथ के आरम्भ में सूरति मिश्र का किसी भी रूप में उल्लेख नहीं है। छप्पय की अन्तिम पंक्ति में 'शिव' शब्द का दो बार प्रयोग है जिनमें से एक प्रयोग रचनाकार के नाम के रूप में हुआ प्रतीत होता है। इससे आरम्भ में ही संकेत मिलता है कि इस ग्रन्थ का रचयिता "शिव" नामक कोई कवि है। आगे बढ़ने पर हम देखते हैं कि प्रत्येक विलास (अध्याय) के समाप्त होने की सूचना देते समय स्पष्टतः "राय शिवदास" का उल्लेख किया गया है।

यथा

"इति श्री राय शिवदास विरचिते सरस-रस ग्रन्थे रस निरूपनं नाइक वर्ननं नाम प्रथमो विलास।"

ग्रन्थान्त में जो पुष्पिका है, उससे भी यही सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना राय शिवदास ने की थी। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री राय शिवदास विरचिते सरस-रस ग्रन्थे रस निरूपणो नाम अष्टमो विलास सम्पूरनं समापत ॥"[2]

---

१. देखिये हस्तलिखित प्रति, ग्रन्याङ्क ३८४ एवं ४१७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर।

२. देखिये, हस्तलिखित प्रति, ग्रन्याङ्क ३८४ एवं ४१७ के अन्तिम पृष्ठ

इसके अनन्तर लिपिकर्त्ता ने लिपि-काल आदि का उल्लेख किया है।

पुष्पिका से पूर्व कवि ने ग्रन्थ-रचना के कारण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—

"कारन कहत जु ग्रन्थ को, सौ सुनिये चितलाइ।
जिहि विधि भेद नवीन ए, कहति सुमति उपजाइ ॥११६॥

× × ×

एक समै मधि आगरै, कवि समान कौ जोग।
मिलौ आइ सुखदाइ हिय, जिनकी कविता जोग ॥१२२॥

तब सब ही मिलि मंत्र यह, कियौ कविनु बहु जाँनि।
रचियै ग्रन्थ नवीन इक, नए भेद रस ठानि ॥१२३॥

जिहि विधि कवि मिलि कैं कही, जथा जोग लहि रीति।
उनही मैं जे संमवै, कहे भेद जुत प्रीति ॥१२४॥

अपनी मति परमान सौं, कहे भेद विस्तारि।
लखौ जु या मैं नूनता, सो कवि लेहु सुधारि ॥१२५॥

कवि अनेक मति मैं हुतै, पै मुख कवि परबीन।
जाके सम्मत सौं भयौ, पूरन ग्रन्थ नवीन ॥१२६॥

सूरतिराम सुकवि सरस, कान्यकुविज बहु जांन।
बासी ताही नगर कौ, कविता जाहि प्रमान ॥१२७॥

केतक धरे सु ग्रन्थ में, वर कवित्त कविराइ।
ताही सौं गम्भीरता, अरथ दरस दरसाइ ॥१२८॥"[1]

इन दोहों में ग्रन्थ रचना का कारण स्पष्ट करते समय सूरति मिश्र के सहयोग-मात्र का उल्लेख किया गया है। वस्तुतः मूल रचनाकार राय शिवदास है तथा उसने कवि-समाज में एकत्र कवियों से विचार विमर्श किया है एवं उनके जो छन्द उसे उपयोगी जान पडे हैं, वे ग्रन्थ में संकलित कर दिये हैं। चूंकि पूर्वोक्त दोहों के अनुसार सूरति मिश्र के कुछ छंदों को भी ग्रन्थ में

---

१. रससरस की हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थाङ्क ३८४ एवं ४१७ अस्टम उत्साह।

सम्मिलित किया गया है, इसीलिए खोज कर्त्ताओं को यह भ्रम हो गया है 'रस-सरस' या 'सरस-रस' नामक ग्रन्थ की रचना सूरति मिश्र ने की थी। दोनों हस्तलिखित प्रतियों को आदि से अन्त तक पढ़ कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह ग्रन्थ सूरति मिश्र की रचना न होकर राय शिवदास की रचना है तथा इसमें सूरति मिश्र के कुछ छंद संकलित हैं। इन दोनों प्रतियों के अतिरिक्त भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय मे भी मुझे १८६५ वि० की एक प्रति मिली है और उससे भी पूर्वोक्त तथ्यों का ही समर्थन होता है।[1]

३—वैतालपचीसी

इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे उपलब्ध हुई हैं, किन्तु उनको सूरति मिश्र की रचना नहीं कहा जा सकता। प्रथम प्रति इटावा नगर के ऊही गांव में मिली है, जो खड़ी बोली में है। दूसरी प्रति उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान में मिली है, जो राजस्थानी में है। प्रथम प्रति की पुष्पिका में सूरति मिश्र का उल्लेख अवश्य है, किन्तु समस्त रचना की भाषा खड़ीबोली होने के कारण हम उसे सूरति मिश्र कृत नहीं मान सकते। दूसरी प्रति में राजस्थानी के प्रयोग के साथ-साथ स्पष्टतः रचनाकार के रूप में राय शिवदास का उल्लेख है। इस प्रति के आदि तथा अन्त इस प्रकार हैं—

आदि—श्री रामजी। श्रीगणेशमंबिकाभ्यांनमः॥ अथ वैतालपचीसी लिख्यते। ग्रन्थरौकर्त्ता श्री गणेश सरस्वती हैं नमस्कारनैं॥

सर्व लोकराविनोदरैअर्थैंग्रन्थकरै छैं॥ एकदक्षिण देश जठै महिला रोघनामइसौ नगर छै। इति श्री शिवदास विरचितायां वैताल पंचविंशत्यां प्रथमं कथानकं॥ (पत्र १३७)

अन्त—

इति श्री शिवदास विरचितायाँ वैताल पंच विंशत्यां पंचविंशतिमं कथानकं॥२५॥

श्री मदुदयपुरनगरे छत्रपतीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री जगतसिंह विजयराज्ये भट्ट श्री नंदरामस्याज्ञया लिखितमिदं पुस्तकं लेखक उदैरामेण। संवत् १७९५ पोस-

---

१. देखिए, 'सरस-रस' की हस्तलिखित प्रति, राजकीय जिला पुस्तकालय भरतपुर, ग्रन्थाङ्क १४–क–३।

सुदि चतुर्दशी भृगुवासरे । श्रीरस्तु । कल्याणमस्तु।
(पत्र १७५ अ)[1]

अतः उक्त दोनों ही प्रतियाँ सूरति मिश्र कृत बैतालपचीसी की प्रतियाँ नहीं हैं।

खोज-विवरण में जिन प्रतियों का उल्लेख है, उनकी भाषा भी खड़ी बोली है। यथा:—ग्रन्थारम्भ—"अथ सूरति कवि कृत बैतालपचीसी लिख्यते। श्री गणेशायनमः ।। धारा नगरी में एक राजा था। वहाँ का राजा गंधर्वसेन। उसकी चार राणियाँ थीं। उनसे ६ बेटे थे। ××"

ग्रन्थान्त—"इति श्री बैतालपचीसी सूरति कवि कृत सम्पूर्ण समाप्त लिषतं मुनुवा पण्डित सं० १८२३ वि० विषय राजा विक्रमादित्य और बैताल री २५ कहानियाँ।"[2]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि खोजकर्त्ता ने ग्रन्थारम्भ और पुष्पिका के आधार पर इस ग्रन्थ को सूरति मिश्र कृत मान लिया है।

इसी विवरण में ग्रन्थाङ्क ४७४ सी, ४७४ डी, ४७४ ई, ४७४ एफ, ४७४ जी, पर बैतालपचीसी की जिन प्रतियों की सूचना है, उनके परिचय नहीं दिए गए हैं, किन्तु उनकी रचना भी खड़ी बोली में होने का उल्लेख है। अतः इन सभी हस्तलिखित प्रतियों के रूप में उपलब्ध 'बैतालपचीसी' सूरति मिश्र की रचना नहीं मानी जा सकती।

ऐसी हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर ही बैतालपचीसी का लिथो अक्षरों में कतिपय स्थानों से मुद्रण भी हुआ था और उन सब मुद्रित प्रतियों में यही उल्लेख मिलता है कि बैतालपचीसी के रचयिता सूरति मिश्र थे।[3] खोज विवरण में कुछ स्थलों पर यह संकेत मिलता है कि सूरति मिश्र ने बैताल-पचीसी का संस्कृत से ब्रजभाषा में अनुवाद किया था और उसी को लल्लूलाल

---

१. देखिए, बैतालपचीसी, हस्तलिखित प्रति, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, ग्रन्थाङ्क ४२२।

२. सभा का १३ वाँ खोज-विवरण, १९२६–२८, ग्रन्थाङ्क ४७४ बी, पृष्ठ ६९९–७००।

३. देखिये, बैतालपचीसी के लिथो–मुद्रित निम्नांकित संस्करण—कलकत्ता–१८५२ ई०; बम्बई (गणपति कृष्ण जी प्रेस) १८५५ ई०; बनारस (हरनारायण चौबे छापा खाना) १८५६ आदि।

ने खड़ी बोली में रूपान्तरित किया। संभवतः हस्तलिखित तथा लिथो मुद्रित रूप में बैतालपचीसी की जो प्रतियाँ सूरति मिश्र कृत बताई गई हैं, वे लल्लूलाल द्वारा किये गये उस रूपान्तर की ही प्रतियाँ हैं, जिसे खोजकर्ताओं ने सूरति मिश्र कृत इसलिए मान लिया है क्योंकि मूलतः संस्कृत से ब्रजभाषा हिन्दी में सूरति मिश्र ने ही अनुवाद किया था। परन्तु आज की स्थिति यह है कि 'बैतालपचीसी' का वह अनुवाद अब उपलब्ध नहीं है, जो सूरति मिश्र ने ब्रजभाषा में किया था तथा जो प्रतियाँ हस्तलिखित या मुद्रित रूप में उपलब्ध हैं, वे सूरति मिश्र कृत नहीं हैं।

४—रसरत्नमाला अथा अन्य ग्रन्थ

'रसरत्नमाला' या 'रसरत्नाकर' नामों से जिन हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख खोज-विवरणों में किया गया है, वह वस्तुतः रसरत्न का विवरण है।[1] अतः रसरत्नमाला सूरति मिश्र का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है।

'भक्तमाल' 'श्रीनाथविलास' नाम से जिन ग्रन्थों को 'शृंगारसार' में सूरति मिश्र कृत बताया गया है, वे न तो खोज-विवरणों में कहीं भी उल्लिखित हैं और न मुझे या अन्य किसी विद्वान को ही उनकी प्रतियाँ मिली हैं। अतः इन पुस्तकों का अस्तित्व शंकास्पद है। ऐसा प्रतीत होता है कि भक्तिविनोद में संकलित उन छंदों को जिनसे इन शीर्षकों का सम्बन्ध है 'शृंगारसार' के क्षेपककर्त्ता ने स्वतन्त्र ग्रन्थों के रूप में स्वीकार कर लिया है।

निष्कर्ष—सूरति मिश्र के नाम से प्रसिद्ध सभी ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियों की छान-बीन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उन्होंने केवल १७ पुस्तकों की ही रचना की थी, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. भक्ति-विनोद
२. नख-सिख
३. रामचरित
४. श्री कृष्णचरित

---

१. देखिए, सभा का खोज विवरण भाग १३ वर्ष–१९२६–२८ ग्रन्थाङ्क ४७४ एस; तथा खोज-विवरण १९०१ वि०, ग्रन्थाङ्क ८६; खोज-विवरण १९०६–८, ग्रन्थाङ्क २४३ डी, आदि।

५. रासलीला
६. दानलीला
७. प्रबोधचन्द्रोदय भाषा
८. रसग्राहक-चन्द्रिका
९. जोरावरप्रकाश
१०. अमरचन्द्रिका
११. कविप्रिया-टीका
१२. रसरत्न-और उसकी टीका
१३. छंदसार-पिंगल
१४. कामधेनु-कवित्त
१५. काव्य सिद्धान्त
१६. अलंकारमाला
१७. बैतालपचीसी

अंतिम ग्रन्थ का मूल ब्रजभाषा रूप अब उपलब्ध नहीं है। अतः उसे इनके उपलब्ध ग्रन्थों में सम्मिलित करना उचित नहीं।

———

स—सूरति मिश्र के ग्रन्थों का सामान्य परिचय

सूरति मिश्र के समस्त ग्रन्थों को विषय की दृष्टि से निम्नांकित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

१—मौलिक काव्य, भक्तिविनोद, नखसिख, दानलीला, रास-लीला, रामचरित, श्रीकृष्णचरित तथा फुटकर छन्द ।

२—अनूदित काव्य,-प्रबोधचन्द्रोदयभाषा

३—रीति-साहित्य—रसरत्न, काव्यसिद्धान्त, छन्दसार-पिंगल, कामधेनु-कवित्त, अलंकारमाला ।

४—टीका-साहित्य—जोरावरप्रकाश, रसगाहकचन्द्रिका, कविप्रिया-टीका अमरचन्द्रिका एवं रसरत्न-टीका ।

यहां हम संक्षेप में इस वर्गीकरण के अनुसार सूरति मिश्र के समस्त उपलब्ध साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत करेंगे ।

१. मौलिक काव्य

१. भक्तिविनोद

२२३ छन्दों में लिखित यह ग्रन्थ एक मुक्तक काव्य है । कवि ने इस ग्रन्थ की रचना संवत १७८५ वि० में की थी । उसने इस सम्बन्ध में छन्द-संख्या १७४ के पश्चात निम्नांकित वार्ता प्रस्तुत की है:—

"बरस गाँठ को कवित्त तहाँ संवत सत्रह सौ पच्चासी जानिये । भाद्रपद कृष्णाष्टमी ग्रन्थ जन्मा । प्रान सिद्ध सुख भूम यामें संवत जानिये ।१७८५।।"

इस वार्ता के पश्चात भी ग्रन्थ में ४९ छन्द मिलते हैं । इन छन्दों का विषय भी भक्ति की सीमा में ही आता है । अतः सम्भव है कि १७८५ वि० के पूर्व या पश्चात भक्ति-सम्बन्धी अन्य फुटकर छन्द भी इस ग्रन्थ में जोड़ दिए गए हों ।

भक्तिविनोद को हम कृष्ण-भक्ति-प्रधान काव्य कह सकते हैं, किन्तु ईश्वर के अन्य रूपों, भक्ति-सम्बन्धी सांस्कृतिक प्रसंगों तथा प्रकृति के मनोरम

चित्रों का भी उसके साथ विस्तार से चित्रण किया गया है। इस काव्य में निम्नांकित विषयों पर समय-समय पर लिखे गये छन्द संकलित हैं—

ध्यान, नाममहिमा, विनय, मन-शिक्षा, देव-स्तुति, गुरु-वन्दना, विविध वर्णन, श्री कृष्ण-जन्म, राधा-जन्म, बाल-लीला, पर्व-वर्णन, गोवर्द्धन-धारण, श्रीकृष्ण-ध्वजा, रास-लीला, प्रिया की आसक्ति, दधि-दान. वसंत-वर्णन, जल-यात्रा, रथ-यात्रा. अन्य वर्णन (तीज. पत्रिका. खराऊँ. राखी) वर्ष-गाँठ. ग्वाल-मण्डली. प्रेम-वर्णन. मान-वर्णन. प्रवास-विरह बारहमासा. षट्ऋतु-वर्णन. रामचरित-प्रसंग. भक्तोद्धार. उद्धव-गोपी-संवाद. द्रौपदी-विनय. द्वारका-प्रसंग तथा सुदामा-संकोच ।

कवि ने इन विषयों के माध्यम से अपनी भक्ति-भावना का विस्तार से चित्रण किया है। वह श्रीकृष्ण एवं राधा के प्रति पूर्णत: समर्पित है तथा ईश्वर के अन्य रूपों में भी उसी परम सत्ता का सर्वत्र दर्शन करता है। उसकी भक्ति-भावना प्रेम, श्रद्धा और समर्पण की गंभीर व्यंजना पर आधारित है। भक्ति की व्यापक सीमा में जड़-चेतन के विविध प्रेम-व्यापारों का विषद चित्रण होने के कारण मनुष्य की अन्त: प्रकृति तथा रमणीय बहिप्रकृति को समान रूप से स्थान मिला है।

यह एक मौलिक भक्ति-काव्य है। इसकी भाषा सरस ब्रजभाषा है। कवित्त और सवैया छन्दो का प्रयोग करके कवि ने रीतिकालीन शिल्प का परिचय दिया है। यों लीलावती, माझ. भुजंग-प्रयात. दोहा आदि कुछ छन्दों का भी प्रयोग किया गया है, किन्तु वे कवि के अधिक प्रिय छन्द नहीं हैं।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना कहाँ रह कर की थी. इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता; किन्तु विषयाभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता तथा ईश्वर के प्रति समर्पण भाव के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस ग्रन्थ की रचना के समय कवि किसी राजा का आश्रित नहीं रहा होगा।

२. नखसिख

इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें रचना-काल का कोई उल्लेख या संकेत नहीं है। किसी अन्य साक्ष्य से भी इसकी रचना के समय का ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इस काव्य में कवि की प्रतिभा की प्रौढ़ता स्पष्ट झलकती है एवं शृंगार चित्रण की रुचि भी प्रधान है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसकी रचना "भक्ति-विनोद" के पश्चात हुई होगी।

यह ग्रन्थ रीतिकाल में पर्याप्त प्रसिद्ध रहा होगा। यही कारण है कि शृंगार-सम्बन्धी कई संग्रहों में इसके छन्द प्रतिष्ठा पूर्वक संकलित किए गए हैं। आधुनिक काल के आरम्भिक ब्रजभाषा कवि सरदार ने भी अपने महत्व-पूर्ण ग्रन्थ "शृंगार-संग्रह" में इसके काव्य कतिपय छन्दों को स्थान दिया है।

उदाहरणार्थ—

किधौं यह पान पै बसीकरन मन्त्र लिख्यौ
देखि छवि मोहै कोऊ विद्या पंचसर की।

हृदय सरोवर शृंगार जल भरचौ कैंधौं
उमड़ि चल्यौ है नाभि कुण्डिका गहर की।

छोटे-छोटे आखरनि अवला लिखाए ये तौ
अपनी सवलताइ 'सूरति' समर की।

जिन्हें देखें नैननि की गति मति भाजी यह
तेरो 'रोम' राजी कैंधौं वाजो वाजीगर की।[1]

कैंधौं विधि-रचना की रची है कसौटी यह
अरुन वरन अचरज मन ह्वै रह्यौ।

कैंधौं तेरी बानी ठकुरानी मनमानी ताकी
राती फूल सेज रंग जाते न कछू कह्यौ।

'सूरति' सु कैंधौं वोल रतन अमोल दान
दै दै सवही को सुख दुख सब ही दह्यौ।

नैंक हू बखानि सकै काहू कौ सुवस ना,
जु रस तेरी रचना सु रस ना कहूं लह्यौ।[2]

---

१. शृंगार-संग्रह, सरदार कवि (कविता-काल १९०२–१९४० बि०), लिथौ–मुद्रित १९२१ वि० का संस्करण, आनन्दवन छापाखाना. बनारस पृष्ठ १४६

२. वही " पृष्ठ १६०

इस काव्य में कुल ४१ छंद हैं। कवि ने नायिका के नख-सिख सौन्दर्य का, जिसमें अंग और आभूषण दोनों सम्मिलित हैं, मुक्तक शैली में आलंकारिक वर्णन किया है। सभी वर्णन रम्य एवं व्यंजना-पूर्ण हैं। भाषा ब्रजभाषा है तथा कवित्त-सवैया की शैली अपनाई गई है।

३. दानलीला

यह १४ छंदों की एक लघु मुक्तक रचना है इसमें कृष्ण, राधा तथा गोपियों की दधि-लीलाओं का भक्ति-भाव-पूर्ण चित्रण है। एक छंद भक्ति-विनाद औ[illegible] [illegible] में समान है।[1] इस पुस्तक का रचना-काल अज्ञात है, किन्तु काव्य-[illegible] प्रौढ़ता एवं भक्ति-विनोद के एक छंद के समावेश से यह अनुमान होता है कि इसकी रचना भी सम्वत् १७८५ वि० के आसपास ही की गई होगी। इस काव्य में भी कवित्त-सवैया कवि के प्रिय छंद हैं, भाषा ब्रजभाषा है एवं संवाद की शैली अपनाई गई है।

४. रासलीला

इस कृति में कृष्ण-रासलीला के ३६ छंद संकलित हैं। जिनमें से ५ छंद भक्ति-विनोद में भी मिलते हैं।[2] यह पुस्तक भी कृष्ण-भक्ति की सुन्दर रचना है। इसकी रचना दानलीला के साथ ही की गई होगी, किन्तु रचना-काल का कोई उल्लेख न होने से निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

५. रामचरित

यह १२ छंदों का लघु प्रबन्ध-काव्य है। इसमें दशरथ के घर राम के अवतार, विश्वामित्र-आश्रम-गमन, ताड़िका-संहार, सीता से विवाह, वन-वास, भरत का चित्रकूट-गमन और पादुका लेकर अयोध्या-आगमन, राम द्वारा मारीचि-वध, सीता हरण, शबरी-सत्कार, बालि-वध, हनुमान द्वारा लंका-दाह, सागर-संतरण, लंका-युद्ध, सीता-मिलन, अयोध्या में पुनरागमन और राजतिलक, सीता-निर्वासन, लवकुश-युद्ध और अन्त में अयोध्या का आनन्दोत्सव आदि के प्रसंग संक्षेप में प्रस्तुत किये गए हैं।

इस पुस्तक में भी रचना-काल का उल्लेख नहीं है। इसकी भाषा ब्रज भाषा है, जो अधिक प्रौढ़ नहीं है। विषय-वर्णन तथा काव्य-शिल्प में कवि-

---

१. छंद-संख्या १३ भक्तिविनोद में छंद-संख्या १५१ पर है।

२. छंद-संख्या ४,१४,२६,२७, एवं २९ भक्ति-विनोद के छंद-संख्या १४०, १३३,१३०, १३१ तथा १५० पर हैं।

प्रतिभा का आरम्भिक रूप मिलता है। अतः निश्चय ही यह पुस्तक भक्तिविनोद से पूर्व की रचना है।

६. श्रीकृष्णचरित

इस काव्य में १२ छंदों में श्रीकृष्ण के चरित की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। कथा का आरम्भ श्रीकृष्ण के जन्म से हुआ है। नन्द-यशोदा के घर उनका पालन-पोषण, पूतना-वध, माखन-चोरी, अघासुर-वध, चीर-हरण, गोवर्द्धन-धारण, रास-लीला, कंस-वध, भ्रमर-गीत, जरासंघ-वध, द्वारिका-गमन, रुक्मिणी-विवाह, सुदामा-प्रेम आदि प्रसंगों का उल्लेख मात्र करके कवि ने इस तथ्य पर बल दिया है कि प्रभु सदा भक्त के हितार्थ अनेक लीलाएँ करते हैं। काव्य की भाषा व्रजभाषा है तथा प्रमुख छंद चौपाई है। इस काव्य में भी रचना-काल का उल्लेख नहीं है। विषय-वर्णन तथा अभिव्यंजना के आधार पर यह अनुमान होता है कि इस काव्य की रचना भक्ति-विनोद से पहले हुई होगी। यह कृति भरतपुर में उपलब्ध भक्तिविनोद की प्राचीन प्रति के साथ ही लिखी हुई है तथा अन्तिम छंद एवं पुष्पिका में 'सूरति' कवि का उल्लेख भी है।

७. फुटकर छंद

सूरति मिश्र ने फुटकर रूप में भी समय-समय पर पर्याप्त छंद लिखे होंगे, किन्तु वे सभी अब उपलब्ध नहीं हैं। कुछ छंद हमें राय शिवदास कृत 'रससरस' ग्रन्थ में मिले हैं। हमने उनको 'सूरति' नाम की छाप के आधार पर संकलित किया है।[1] 'रससरस' में उनके कुछ ऐसे छंद भी हो सकते हैं, जिनमें उनके नाम की छाप न हो, किन्तु उन्हें छाँट सकने का कोई प्रामाणिक आधार हमारे पास नहीं है।

सूरति मिश्र ने जो टीकाएँ लिखी हैं, उनमें भी उन्होंने स्व-रचित फुटकर छंद सम्मिलित किये हैं। इनमें से अधिकांश छंदों का सम्बन्ध टीका के मूल विषय से ही है, किन्तु कुछ छन्द ऐसे भी हैं, जो शुद्ध मौलिक काव्य की कोटि में आते हैं। इस प्रकार के कुछ छन्द कवि की 'रसगाहकचंद्रिका' टीका में मिलते हैं।[2]

हमें फुटकर रूप से सूरति मिश्र का जो काव्य उपलब्ध हुआ है, वह अधिकांशतः शृंगार-परक है, जो रस आदि के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया

---

१. देखिए परिशिष्ट—१. रस-सरस से संकलित छंद।
२. देखिये परिशिष्ट—१. रसगाहकचंद्रिका से संकलित छंद।

गया है। कुछ छन्दों में राज-प्रशस्ति भी मिलती है। सभी छन्दों की भाषा ब्रजभाषा है।

२. अनुदित काव्य

प्रबोधचंद्रोदय-भाषा

सँस्कृत का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक नाटक हिन्दी-कवियों को बहुत प्रिय रहा है। मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इसके कई अनुवादों का उल्लेख मिलता है। सूरति मिश्र ने भी ब्रजभाषा-पद्य में इसका अनुवाद किया था, जो प्रबोध चन्द्रोदय-भापा के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ संस्कृत के मूल नाटक का छायानुवाद मात्र है तथा कहीं कहीं पर स्वतन्त्र भाव भी व्यक्त किये गए हैं।

संस्कृत का मूल नाटक ब्रह्मोपासना के मंगलाचरण से आरम्भ हुआ है और सूरति मिश्र ने अपने अनुवाद का आरम्भ निम्नांकित गणेश-वन्दना से किया है:—

> गुण गणेश गावौ गुणी, सबविधि सुख सरसाइ।
> बाढ़ै बुद्धि विवेक बल, महामोह मिटि जाइ ॥१॥

इसके पश्चात् निराकार ब्रह्म की स्तुति की गई हैं:—

> अलख अनादि अनंत अज, अद्भुत अतुल अमेव।
> अविनासी अद्वय अमित, नमस्कार तिहि देव ॥२॥

कवि ने स्पष्ट लिखा है कि मैं संस्कृत के प्रबोधचन्द्रोदय नाटक की कथा को भाषा अर्थात् ब्रजभाषा में प्रस्तुत कर रहा हूँ:—

> है अबोध नाटक विदित, कथा जु संस्कृत माँहि।
> सो यह भाषा में कियौ, जिहि सुनि सब दुख जाहिं ॥३॥

उसने आगे लिखा है कि—

> कही कथा संक्षेप ते, सूरति सुकवि बनाइ।
> रोचक अरु वह समझिये, तौ भव तरन उपाइ ॥४॥

आगे २-३ छंदों तक कथा का विस्तार हुआ है। कवि ने पुस्तक के नाम के साथ 'नाटक' शब्द का प्रयोग नहीं किया। वस्तुतः उसने संस्कृत के नाटक-की कथा को काव्य का रूप दिया है, जिसमें मूल नाटक के पात्रों का प्रयोग

पद्यों का अंश बना कर किया गया है। अतः हम इस पुस्तक को अनूदित काव्य की श्रेणी में रख सकते हैं।

सूरति मिश्र ने प्रबोधचंद्रोदय के अनेक प्रसंगों को नवीन रूप में रोचक बनाने की चेष्टा की है। यथा, काम और रति के वर्णन के प्रसंग में कवि लिखता है:—

संग लिए रति नाम वाम, अभिराम रूप को धारै।
मद घूमत नैंना रतनारे प्रिया-कंठ भुज डारै॥
फूलन के गहने, फूलन के धनुष-बान कर सोहैं।
सुन्दर श्याम सलौनी मूरति, जाहि देखि सब मोहैं॥१॥[1]

पुस्तक में रचना-काल का उल्लेख नहीं है, किन्तु जोरावरप्रकाश के पश्चात् यह काव्यानुवाद सम्पन्न हुआ हो, ऐसा सम्भव है, क्योंकि इसका विषय शृंगार से थके हुए आश्रयदाता की मनोवृत्ति को तुष्ट करने वाला है। जोरावरप्रकाश की रचना संवत् १८०० वि० में हुई थी, अतः प्रबोधचंद्रोदय-भाषा की रचना १८०० वि० के कुछ वर्ष पश्चात् मानी जा सकती है।

३. रीति-साहित्य

(१) अलंकारमाला

यह सूरति मिश्र का प्रसिद्ध रीति-काव्य है, जिसका उल्लेख कई साहित्यकारों एवं और आलोचना-ग्रन्थों में हुआ है। इसमें अलंकारों के लक्षण और उदाहरण दोहा छंद में प्रस्तुत किए गए हैं। कवि ने आरंभ में रचना का उद्देश्य बताते हुए लिखा है:—

अलंकार कवितान के, सबन मनभिवे हेत।
रच्यौ ग्रन्थ "सूरति" सु यह, लक्षण-लक्ष्य-निकेत॥[2]

इस काव्य में उपमा अलंकार से अर्थालंकारों का वर्णन आरंभ हुआ है तथा शब्दालंकारों पर मध्य में विचार किया गया है। लगभग सभी महत्त्व-पूर्ण अलंकारों को स्वरचित उदाहरण देकर स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। अन्त में कवि ने रचना-काल का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

---

१. प्रबोधचन्द्रोदय-भाषा, छन्द १५
२. अलंकारमाला, सम्पादक डा. दिनेश, सूरति मिश्र, छंद २

संवत सत्रह सै बरस, छासठ सावन मास।
सुर गुरु सुद एकादशी, कीनौ ग्रन्थ प्रकास ।। [1]

इस दोहा के आधार पर इस ग्रन्थ का रचना-काल संवत् १७६६ वि. सिद्ध होता है, जिसे डा. भागीरथ मिश्र, डा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पं. रामचंद्र शुक्ल आदि विद्वानों ने भी खोज-रिपोर्टों के आधार पर स्वीकार किया है। इसी ग्रन्थ के अन्त में निम्नांकित दोहा भी मिलता है, जिसके अनुसार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने सूरति मिश्र को आगरा-निवासी माना है—

सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास।
रच्यौ ग्रन्थ तिह भूषननि, वलित विवेक विलास ।। [2]

सूरति मिश्र की अन्य कृति "काव्य-सिद्धान्त" में भी छंद-संख्या १२१ में अलंकारमाला का उल्लेख मिलता है। यथा—

अलंकारमाला विषै, अलंकार लखि लेहु।
यह विधि कविता रचहु तिय, कृष्ण गुनन चित देहु ।।

इस काव्य में अलंकारों का विवेचन सरल ढंग से सुबोध शैली में किया गया है। आवश्यकतानुसार विषय को स्पष्ट करने के लिये गद्य में वार्ताएँ भी दी गई हैं तथा प्रश्नोंत्तरों की शैली भी अपनाई गई है। भाषा व्रजभाषा है, जो सुबोध और व्यजना-पूर्ण है।

२. रसरत्न

यह सूरति मिश्र कृत रस-वर्णन-सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें कुल ६५ छंद हैं, जिनमें से १४ कवित्त विषय का मूलाधार हैं। कवि ने स्वयं लिखा है—

चौदह ये सब कवित्त हैं, चौदह रतन प्रमान।
यातें नाम सुग्रन्थ को, यह रसरत्न सुजान ।। [3]

इन कवित्तों के साथ दोहों में विषय का विस्तार किया गया है। इस काव्य में सभी रसों का वर्णन नहीं है, केवल शृंगार रस, उसके भावादि और उससे सम्वन्धित नायक-नायिका भेद का चित्रण संक्षेप में किया गया है।

---

१. अलंकारमाला, सूरति मिश्र, सम्पादक डा, दिनेश, अन्तिम पृष्ठ का छंद।
२. अलंकारमाला, सूरति मिश्र, सम्पादक डा. दिनेश, अन्तिम छंद।
३. रसरत्न, रचयिता-सूरति मिश्र, सम्पादक-डा. दिनेश, छंद ६५

कवि ने इस अन्तिम छंद में ग्रन्थ की रचना के समय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"वसु रस मुनि विधु संवतहि माधव रवि दिन पाइ।
रच्यौ ग्रन्थ सूरति सु यह, लहि श्रीकृष्ण सहाइ॥"[1]

इनसे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना संवत् १७६८ वि० में हुई थी।

(३) छंदसारपिंगल

इस ग्रन्थ में विभिन्न छंदों में छंदशास्त्र का सरस वर्णन किया गया है। सूरति मिश्र ने आरंभ में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि मैं अपनी बुद्धि से पिंगल का कुछ वर्णन कर रहा हूँ—

कृष्ण चरन चित आन, कहौं सुमति पिंगल कछू।
जिह तै छंदह ज्ञान, प्रभु-गुन ता नहि बरनिये॥[2]

हमें इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ मिली हैं, उनमें रचना-काल का उल्लेख नहीं है; किन्तु काव्य सिद्धान्त में इस ग्रन्थ का भी नाम आया है, जिससे यह सिद्ध है कि "छंदसार-पिंगल" की रचना "काव्य-सिद्धान्त" ग्रन्थ से पहले हो चुकी थी। कवि ने लिखा है :—

व्रत्त विचार कहे सु तो, छंदसार लखि मित्त।
नव रस कहुँ संक्षेप तैं, कहत सुनहु दै चित्त॥[3]

इस ग्रन्थ में मात्रिक एवं वर्णिक दोनों प्रकार के सभी प्रमुख छंदों के लक्षण उदाहरण देकर पद्य में समझाए गए हैं। भाषा ब्रजभाषा है तथा विवेचन की शैली पर्याप्त रोचक और स्पष्ट है।

(४) कामधेनु-कवित्त

सूरति मिश्र का छंदशास्त्र-सम्बन्धी यह द्वितीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल १२६ छंद हैं, जिनमें प्रारंभ में ९ दोहों में ग्रन्थ का परिचय दिया गया है। तत्पश्चात एक कवित्त है, जो मूल "कामधेनुकवित्त" कहा जा सकता है,

---

१. रसरत्न, रचयिता-सूरति मिश्र, सम्पादक-डा. दिनेश, छंद ९५
२. छंदसार-पिंगल, रचयिता-सूरति मिश्र सम्पादक-डा. दिनेश, छंद १
३. काव्य-सिद्धान्त, रचयिता-सूरति मिश्र सम्पादक-डा. दिनेश, छंद ९३

क्योंकि इसी एक छंद से ९४ छंदों एवं १५ रागों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। यह ग्रन्थ कवि की छंदशास्त्र-प्रवीणता का परिचायक है। एक ही कवित्त में भिन्न-भिन्न क्रमों में आदि, मध्य और अन्त से शब्द-त्याग एवं ग्रहण करके ९४ छंदों एवं १५ रागों के लक्षण तथा उदाहरण निकालने का काम भी कवि ने स्वयं पूर्ण किया है, जिससे उसकी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थ में रचना काल का उल्लेख करते हुए अन्त में एक दोहा इस प्रकार दिया गया है—

सत्रह सै उनअठ बरस, माधव सुदि गुरुवार।
पुष्य सप्तमी कौं भयौ कामधेनु अवतारु ॥

इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना १७७९ वि० में हुई थी।

(५) काव्य-सिद्धान्त

सूरति मिश्र ने इस ग्रन्थ की रचना संवत् १७९८ वि९ में की थी, जैसा कि निम्नांकित दोहा से सिद्ध है :—

जलत दीप परकास कों, सुभ सु ब्रह्म अवतार।
सत्रह सै अट्ठानवै, फागुन सुदि बुधवार ॥[१]

इस ग्रन्थ में पद्य-शैली में काव्य के सभी प्रमुख तत्वों पर विचार किया गया है। आरम्भ में कवि ने काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, शब्द-शक्ति आदि पर विचार किया है, तत्पश्वात् काव्य-दोषों, काव्य-गुणों, नव-रस और भावों पर विचार किया गया है।

अपने अन्य रीति-काव्यों के समान इस काव्य में भी सूरति मिश्र ने आरम्भ में श्रीकृष्ण और राधा का भक्ति-पूर्वक स्मरण किया है तथा कवि की परिभाषा देते हुए लिखा है कि :—

कवि ताही कूँ कहत हैं, समझै कविता अंग।
ब्रजसविता-गुन जो कहै, तौ छविता प्रति अंग ॥[२]

कवि की वर्णन-पद्धति सरल है तथा कठिन विषय को भी सुबोध वनाने के लिए वह सदैव सचेष्ट रहा है, इसलिए उसने अनेक स्थलों पर सरस उदाहरण

---

१. काव्य-सिद्धान्त, रचयिता-सूरति मिश्र सम्पादक-डा. दिनेश, छंद १४७
२, काव्य–सिद्धान्त, रचयिता–सूरतिमिश्र सम्पादक–डा० दिनेश, छंद–२

दिए हैं तथा प्रश्नोत्तर की शैली भी अपनाई है। काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। इस ग्रन्थ में कवि की अलंकारमाला, रसरत्न तथा छंदसार-पिंगल नामक रचनाओं का भी उल्लेख है।

४. टीका–साहित्य

(१) जोरावरप्रकाश

इस ग्रन्थ में प्रसिद्ध कवि केशवदास कृत रसिकप्रिया की टीका ब्रज-भाषा-गद्य में प्रस्तुत की गई है। आरंभ में कवि ने भक्तिविनोद का निम्नांकित छंद मंगलाचरण के रूप में प्रस्तुत किया है—

पूजि मन वाकों, आदि मानै जग जाकों,
नर ध्याइ नैंक ताकों सुख लहै सिद्धि गति कों।

परम दयाल वड़े पूरन कृपाल, करें
छिन में निहाल दै कैं आनन्द सु अति कों।

चरन सरन जाकी भरति मनोरथनि,
'सूरति' भवन तीनों यहै मतौ मति कौ।

हेत है सुखासन कौ, बुद्धि के प्रकासन कौ,
विघन विनासन कौ नाम गणपति कौ।

इस छंद के पश्चात् कवि ने १६ दोहों में बीकानेर के राज-वंश और राजा जोरावरसिंह की प्रशंसा की है। इन्हीं जोरावरसिंह के आश्रय में रह कर यह ग्रन्थ लिखा गया था। अतः इन्हीं के नाम पर कवि ने इसका नामकरण "जोरावरप्रकाश" किया है। इक्कीसवें दोहे में ग्रन्थ-रचना का समय इस प्रकार उल्लिखित है :—

संवत् सत अष्टादशे, फागुन सुदि गुरुवार।
जोरावरप्रकाश कौ, तिथि सप्तमि अवतार॥

इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना फाल्गुन सुदि सप्तमी गुरुवार को संवत् १८०० वि० में हुई थी।

इस ग्रन्थ में "रसिकप्रिया" का पूर्ण पाठ संकलित है तथा हर छंद के पश्चात् गद्य में विस्तृत व्याख्या दी गई है, जिसमें शब्दों के गूढ़ अर्थ विस्तार से समझाते हुए अभिप्राय की गहराई को स्पष्ट किया गया है। आवश्यकतानुसार

अलंकार-निर्देश भी किया गया है। अन्त में कवि ने इस टीका का लक्ष्य स्पष्ट किया है, जिसमें शृंगार के स्थान पर भक्ति और ज्ञान-वर्द्धन की प्राप्ति का संकेत है। वह लिखता है—

जोरावर परकास कों पढ़ै गुनै चित लाइ।
बुद्धि-प्रकाश रु भक्ति निज, ताहि देहिं हरिराइ ॥[1]

(२) रसगाहक-चंद्रिका

इस ग्रन्थ का आरंभ निम्नांकित मंगलाचरण से हुआ है—

रसिक-सिरोमनि रसिक-प्रिय, रस-लीला चितचोर।
रसा रास रस-मयकरी, जय जय जुगलकिशोर ॥१॥

आगे कवि ने लिखा है—

रसिकप्रिया टीका रची, सूरति सुकवि बनाइ।
यह रस गाहकचंद्रिका, नाम धरो सुखदाइ ॥२॥

जिहि प्रकार इहि ग्रन्थ की, रचना प्रगटी आनि।
सो कारण सुनिये सकल, कवि कोविद सुखदानि ॥३॥

तखत जहांनाबाद में, श्री नसरुल्लहखाँन।
दान ज्ञान किरपान विधि, जस जिहिं प्रकट जहान ॥४।

इसी नसरुल्लाहखाँन के आश्रय में रह कर यह टीका लिखी गई थी। वह स्वयं भी अच्छा कवि था और कविता में अपना उपनाम "रसगाहक" रखता था। उसके इस उपनाम पर ही सूरति मिश्र ने टीका का नाम "रसगाहक चन्द्रिका" रखा था। कवि ने रचना-काल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

सत्रह से इक्यान,वें माघव सुदि रविवार।
यह रसगाहकचन्द्रिका, पुष्य नखत अवतार ॥

कवि ने ग्रन्थ का आरम्भ करने से पूर्व विस्तार से अपने और आश्रय-दाता के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है तथा बतलाया है कि नसरुल्लहखाँन को रसिकप्रिया पढ़ाने के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया था।

---

१. जोरावरप्रकाश, सम्पादक—डा० दिनेश, षोडश प्रभाव, छंद १८।

इस टीका में गद्य के स्थान पर पद्य की शैली का प्रयोग हुआ है। इसमें "रसिकप्रिया" के सभी छंद संकलित नहीं हैं, केवल उसके मुख्य छंदों का संकेत है और वह भी व्याख्या के साथ जुड़ा हुआ है। यथा—

"अथ ग्रन्थ-प्रसंग आरम्भ

प्रथम मंगलाचरण की, छप्पै कही बखानि।
एक रदन गज वदन या में प्रश्न सु जानि॥

मदन ग्रन्थ रसिकप्रिया, काम केलि इहि माँहि।
मदन कदन कहि क्यों बनैं, रस पोषक यह नाहिं॥"[1]

कवि ने पद्य में प्रश्नोत्तर शैली अपनाई है और इसके साथ कहीं–कहीं प्रश्नोत्तर के साथ में गद्य का भी प्रयोग किया है। यथा—

(१) तहाँ और अर्थ करि उत्तर
(२) सिद्धान्त अर्थ को उत्तर

समस्त ग्रन्थ में व्याख्या को प्रश्नोत्तर के द्वारा सरल बनाने की चेष्टा की गई है, किन्तु उस चेष्टा में कवि की प्रतिभा ने अनेक स्थानों पर मौलिक काव्य-जैसी गंभीरता भी पैदा करदी है।

इस ग्रन्थ में पद्य-शैली के प्रयोग के कारण विषय का विस्तार उतना नहीं है, जितना 'जोरावरप्रकाश' में है, तथापि पद्य-शैली के प्रयोग के कारण प्रभाव की गरिमा इसे अवश्य अधिक प्राप्त हुई है।

(३) कविप्रिया-टीका

सूरति मिश्र ने केशवदास-कृत कविप्रिया की टीका के रूप में प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है। इसमें पूर्ण कविप्रिया को स्थान मिला है, जिससे उसके नए पाठ पर प्रकाश पड़ता है।

ग्रन्थ का आरंभ निम्नांकित मंगलाचरण से हुआ है :—

गरुड़पाल गिरिपाल, गौंरि गिरा गण ग्रहण गुरु।
ए जिहि रूप रसाल, वंदों पग तेहि जुगल के॥

इसके पश्चात मूल ग्रन्थ के छंद और उनके साथ यथावश्यक टीकाएँ पद्य में प्रस्तुत की गई हैं। कहीं-कहीं गद्य में वार्ताएँ भी मिलती हैं, पर वे बहुत

१. रसगाहकचन्द्रिका, सम्पादक–डा० दिनेश, प्रथम विलास, छंद–३८

कम हैं। सभी छंदों की टीकाएँ नहीं दी गई हैं। कवि ने उन अंशों को चुन लिया है, जो गंभीर भाव रखते हैं और उन पर विस्तार से विचार किया है। जो अंश सरल हैं, उन्हें संकलित करके कवि आगे बढ़ गया है। फलतः इस ग्रन्थ में विस्तार की अपेक्षा विवेचन की गंभीरता मिलती है। उदाहरण के लिए, निम्नांकित दोहे की टीका तीन दोहों में की गई है—

गजमुख सनमुख होत ही, विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यों पग परत प्रयाग मग, पाप-पहार विलात ॥१॥

टीका इस प्रकार है :—

'टीका : प्रश्न—

विघनन कौ विमुखें कह्यौ, पापनि कह्यौ विलात।
एक कौ भगिवो एक कौ, नासन यह सम बात ॥२॥

तातें यह दृष्टान्त की, क्रिया मध्य समतानि।
वर्णनीय की नूनता, यह कवि जन सुखदानि ॥३॥

उत्तर—

विमुख अर्थ यह विगत मुख, कहा कि शिर विनु होत।
जातें विमुख विलात को, नसिवौ अर्थ उदोत ॥४॥[1]

इस ग्रन्थ में रचना-काल का उल्लेख नहीं है और किसी आश्रयदाता का भी संकेत नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ भी किसी आश्रय-दाता को काव्य-सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए ही लिखा गया है। कवि ने जिन आश्रयदाताओं को काव्यशास्त्र की शिक्षा दी थी, उनमें बीकानेर के जोरावरसिंह एवं जहाँनावाद के नसरूल्लहखाँन मुख्य हैं। इन दोनों के आश्रय में सूरति मिश्र १७६० से १८०० तक रहे थे। अतः "कविप्रिया की टीका" की रचना भी इसी कालावधि में हुई होगी, ऐसा माना जा सकता है।

(४) अमरचंद्रिका

विहारीदास की 'सतसई' पर सूरति मिश्र ने अमरचंद्रिका नाम से व्रज-भाषा पद्य में प्रस्तुत टीका लिखी है। इसमें सतसई के सभी दोहे संकलित

---

१. कविप्रिया-टीका, सम्पादक—डॉ० दिनेश, प्रथम प्रकाश, छंद १, २, ३ एवं ४।

हैं। वे ५ विलासों में विभाजित किए गए हैं। यह विभाजन रस की प्रमुखता के आधार पर हुआ है। ग्रन्थ का आरंभ बिहारी के निम्नांकित मंगलाचरण से हुआ है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित दुति होय॥

कवि ने इसकी टीका विस्तार से १७ दोहों में की है। आगे सभी दोहों की टीका इतने विस्तार से नहीं है, किन्तु जो दोहे अधिक मार्मिक हैं, उन पर कवि ने इतना ही ध्यान दिया है।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सूरति मिश्र ने बिहारी के हर दोहे का भाव अलंकार की व्याख्या करके स्पष्ट किया है।

हर दोहे में जो अलंकार कवि को मिले है, उनका नाम-निर्देशन ही नहीं किया गया है, अपितु उनकी परिभाषा भी अन्य उदाहरण देकर स्पष्ट की गई है तथा यह समझाया गया है कि बिहारी के सम्बन्धित दोहे में अमुक अलंकार क्यों माना ज ्। अतः यह ग्रन्थ सूरति मिश्र के अलंकारशास्त्रीय प्रखर पाण्डित्य का परिचय देता है। जहाँ एक ओर उन्होंने बिहारी के दोहों में अनेक गूढ़ अर्थों का तर्क-पूर्वक प्रश्नोत्तरों व वार्ताओं का सहारा लेकर उद्घाटन किया है. वहीं उन्होंने अलंकारशास्त्र के अनेक पक्षों पर भी प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की पुष्पिका में १८११ वि० वर्ष का उल्लेख है। यह लिपि-काल हो सकता है और रचना-काल भी। निर्णय के लिए हर 'विलास' के अन्त में दी गई पंक्ति सहायक हो सकती है। उसमें "अमर-सूरत प्रश्नोत्तर" के रूप में इसकी रचना का उल्लेख है। ग्रन्थ का नाम 'अमर' के नाम पर ही 'अमरचंद्रिका' किया गया है। अतः प्रतीत होता है कि यह पुस्तक 'अमर' नामक किसी आश्रयदाता के लिए लिखी गई थी। ये अमर कौन थे, इसका निर्णय हो जाय तो रचना-काल व स्थान का निर्विवाद निर्णय हो सकता है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए जोधपुर के दीवान अमरसिंह या अमरेश का उल्लेख किया है और माना है कि 'अमरचंद्रिका' उन्हीं के आश्रय में रह कर लिखी गई थी। किन्तु मेरे मत से यह ग्रन्थ जोरावरसिंह के चचेरे भाई अमरसिंह के लिए लिखा गया था। अतः पुष्पिका में दिया गया संवत १८११ इसका रचना-काल माना जा सकता है।

(५) रसरत्न-टीका

सूरतिमिश्र ने स्व-रचित 'रसरत्न' की टीका भी स्वयं ब्रजभाषा गद्य में लिखी थी। टीका के अन्त में उन्होंने ११ दोहों में इस तथ्य का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं :—

अति दुरंत भव-निधि सुरति, रहै संत पद पाइ।
सुख अनंत सहजैं रहै, जो भगवंत सहाइ ।।१।।

पोथी यह रस-रतन की, चौदह कवित प्रसिद्ध।
जिहि विधि यह टीका भई, सुनिये सो बुधि बृद्ध ।।२।।

नगर मेड़ता मध्य है, अति सुसील सुज्ञान।
नाम सु जिहि सुलतानमल, जिनकै गुनि सनमान ।।३।।

तिनकी रुचि के कारनै, सूरति सुकवि बनाइ।
सुगम ग्रन्थ ऐसे कियौ, सब पै समुझ्यौ जाइ ।।४।।

इससे सिद्ध होता है कि रसरत्न की टीका मेड़ता-निवासी सुलतानमल के आश्रय में रह कर की गई थी।

टीका के रचना-काल का उल्लेख करते हुए सूरति मिश्र लिखते हैं :—

संवत् सत अस्टादसैं, सावन छटि भृगुवार।
टीका हित सुलतानमल, रच्यौ अमल सुख सार ।।१०।।

इससे स्पष्ट है कि टीका की रचना श्रावण मास में ६, भृगुवार को संवत् १८०० वि० में की गई थी। इस टीका में कवि ने रसरत्न के पद्यों का आशय ब्रजभाषा गद्य में स्पष्ट करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है। भावार्थ को प्रस्तुत करने के साथ-साथ शब्दार्थ पर गंभीरता से विचार किया गया है। यथा—

दोहा--नव रस आदि सिंगार पुनि, हास करुन रुद्र वीर।
　　　भय विभत्स अद्भुत बरनि, शान्त परम गुन धीर ।।

अर्थ—नव रस है या संसार में, तिन में प्रथम ही सिंगार रस है। सिंगार रस तो यह जो नायक-नायिका की प्रीति पूर्ण काम-केलि सम्बन्धी। हास रस जहाँ स्वाँग देखिकैं बात सुनि हाँसी पूर्ण आवै। करुना रस सोक में

होत है। रौद्र रस क्रोध में होत है। इनमें अथवा कहूँ वीर रस। जहाँ डर की बात भयानक। विभत्स रस ग्लानि वर्णन। अद्भुत रस अचम्भा जहाँ होइ। सान्त रस परमार्थ। संसार सों विरक्त होनो, प्रभु में चित्त लगे। ए नव रस कहे। तहाँ अब सिंगार वर्णन करत हैं ॥[1]

अन्त में आश्रयदाता के परिचय के पश्चात् ८ दोहों में कवि ने अपना परिचय भी दिया है,[2] जिससे उसके जीवन के सम्बन्ध में कई तथ्य प्रकाश में आते हैं।

निष्कर्ष

सूरति मिश्र के ग्रन्थों के पूर्वोक्त सामान्य परिचय से यह स्पष्ट है कि वे मूलतः कवि थे। उनकी रचनाओं मे काव्य-पुस्तकों की संख्या अधिक है। उत्कृष्टता की दृष्टि से भी 'भक्तिविनोद' और 'नखसिख' काव्यों को ही प्रमुखता दी जा सकती है। प्रबोध-चंद्रोदय-नाटक का काव्यानुवाद भी उनकी कवित्व-शक्ति का ही परिचायक है। रीति-ग्रन्थों में भी उनकी काव्य-प्रतिभा की झलक मिलती है। उन्होंने काव्य-सिद्धान्तों का प्रभावोत्पादक काव्य-शैली में वर्णन किया है। इस क्षेत्र मे उन्होंने काव्य के सामान्य सिद्धान्तों, रस और नायिका-भेद, अलकार तथा छंदों को पद्य में विवेचन का विषय बनाया है, जो संक्षिप्त होने पर भी विद्वत्ता का परिचायक है।

टीका-साहित्य में उनकी ५ कृतियों के नाम आते हैं, जिनमें से एक स्व-रचित रीति-काव्य 'रसरत्न' की टीका है तथा शेष चार टीकाएँ केशव के प्रसिद्ध रीतिकाव्यों, कविप्रिया एवं रसिकप्रिया तथा बिहारी की सतसई के अर्थ-गांभीर्य को सरल भाषा में प्रकाशित करती हैं। इनमें गद्य-शैली का भी प्रयोग मिलता है, जो रीतिकाल के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

---

१. रसरत्न-टीका, सम्पादक—डॉ० दिनेश, दोहा सं० २ का अर्थ।
२. देखिए, रसरत्न-टीका, सम्पादक—डॉ० दिनेश, करहल की प्रति।

स–सूरति मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सर्वेक्षण

साहित्येतिहासों, खोज विवरणों तथा आलोचना और अनुसंधान-सम्बन्धी ग्रन्थों में उपलब्ध सूरति मिश्र सम्बन्धी सामग्री का परीक्षण करके हम यह सिद्ध कर चुके है कि प्रस्तुत अध्ययन से पूर्व मिश्रजी के सम्बन्ध में हिन्दी जगत् का ज्ञान अत्यन्त अल्प प्रमाणहीन तथा पिष्टपेषण मात्र रहा है। अधिकांश विवरण एक विद्वान् से दूसरे विद्वान् तक यथावत चलते रहे हैं, किसी ने भी न तो उनका परीक्षण किया है और न उसकी आवश्यकता ही समझी है। तासी, शिवसिंह, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचंद्र शुक्ल आदि इतिहास-कारों ने सूरति मिश्र का जो परिचय दिया है, उससे यह सिद्ध नहीं होता कि उनमें से किसी ने भी सूरति मिश्र की एक भी कृति देखी और पढ़ी थी। ग्रियर्सन तक विभिन्न विद्वानों ने उनका उतना ही उल्लेख किया है, जितना कवि-परम्परा में चला आ रहा था। मिश्र बन्धुओं ने कुछ विस्तृत परिचय दिया, किन्तु उसका स्रोत भी केवल खोज-विवरण ही थे। रामचंद्र शुक्ल ने मिश्र बन्धुओं तक प्राप्त विवरण को संक्षेप में प्रस्तुत करके अपने कर्तव्य से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने "हिन्दी साहित्य का अतीत" ग्रंथ में खोज-विवरणों में प्राप्त सूरति मिश्र सम्बन्धी समस्त सामग्री को आलोचनात्मक लेख का रूप दिया, किन्तु तथ्यों की प्रामाणिकता की दृष्टि से उसका भी विशेष महत्व नहीं है, क्योंकि सूरति मिश्र के मूल ग्रंथ वे नहीं देख सके थे। उन्होंने इस स्थिति में जो विवरण प्रस्तुत किए, उनमें अनेक असंगतियाँ रह गईं। उदाहरणार्थ, उन्होंने 'शृंगारसार' नामक एक अप्रामाणिक रचना को खोज-विवरण के आधार पर सूरति मिश्र कृत मान लिया और उसके अनुसार यह तथ्य प्रस्तुत किया कि सूरति मिश्र ने आरम्भ में भक्ति-काव्य लिखा तथा उसके पश्चात् वे लोकोपकार की दृष्टि से काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की रचना के लिए प्रेरित हुए। आचार्य जी ने 'अलंकारमाला' को, जो सं० १७६६ वि० में लिखी गई थी, भक्ति-काव्य के पश्चात् लिखी गई रचना माना, जबकि 'भक्ति-विनोद' जैसा महत्वपूर्ण भक्ति-काव्य उसके उन्नीस वर्ष पश्चात् लिखा गया था। इसी प्रकार गंगेश नामक गुरु की कल्पना, सबसे अंत में अनुवाद

की रुचि और रसगाहकचंद्रिका, जोरावरप्रकाश एवं कविप्रिया-टीका को कभी एक ग्रंथ मानना और कभी दो ग्रंथ बताना तथा कभी रसगाहकचंद्रिका को कविप्रिया की टीका घोषित करना आदि बातें इस सत्य का प्रमाण हैं कि उनके समय तक भी सूरति मिश्र के सम्बन्ध में जो ज्ञान चल रहा था, वह खोज-विवरणों की सीमा पार नहीं कर सका था। रीतिकाल के सम्बन्ध में जो शोध-ग्रंथ लिखे गए, उनमें पूर्वोक्त विद्वानों की अपरीक्षित सामग्री का ही उल्लेख होता रहा और किसी ने भी सूरति मिश्र की मूल रचनाओं को खोजने का प्रयास नहीं किया, केवल डॉ० भगीरथ मिश्र ने अपने "हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास" में "काव्य-सिद्धान्त" नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ का प्रामाणिक रूप में प्रथम बार उपयोग किया हैं।

सूरति मिश्र के सम्बन्ध में देने वाली सामग्री का परीक्षण करके हम जिस अन्य महत्वपूर्ण तथ्य पर पहुँचे हैं, वह यह है कि रीतिकाल का अध्ययन करने वाले या इतिहास लिखने वाले सभी प्रमुख विद्वान् उनकी महिमा स्वीकार करते हैं और यह मानते है कि वे उस काल के प्रथम श्रेणी के कवियों तथा आचार्यों में से एक थे। हमने उनके समस्त ग्रंथों का, जो हस्तलिखित रूप में अज्ञातावस्था में पड़े थे, अन्वेषण और पाठ-निर्धारण करके जब अध्ययन आरंभ किया, तब अनेक महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ सामने आईं। उदाहरणार्थ, सूरति मिश्र के ग्रंथों की पांडुलिपियों का परिचय देते समय हमने यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि 'रस नरस' या 'सरसरस' नामक ग्रंथ, जिसे खोज-विवरणों और साहित्येतिहासों में सूरति मिश्र कृत बताया गया है, राय शिवदास की रचना है और उसे आगरा में एक कवि-समाज के अवसर पर लिखा गया था तथा सूरति मिश्र की स्वीकृति से उनके भी कुछ छंद उसमें सम्मिलित किए गए थे। इसी प्रकार 'जोरावरप्रकाश', 'रसगाहकचंद्रिका' और 'कविप्रिया-टीका' तीन भिन्न रचनाएँ हैं। प्रथम दो रचनाएँ केशवदास कृत 'रसिकप्रिया' की टीका के रूप में लिखी गई हैं और 'कविप्रिया-टीका' ही केवल केशवकृत 'कविप्रिया' की टीका है। एक अन्य तथ्य यह प्राप्त हुआ है कि 'शृंगारसार' सूरति मिश्र की रचना नहीं है, मुरलीधर मिश्र ने उनके रसरत्न आदि ग्रंथों की सामग्री लेकर एवं उनकी कृतियों का उल्लेख करके उसका स्वरूप खड़ा किया है। इस अप्रामाणिक कृति 'शृंगारसार' में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर 'भक्तमाल', 'श्रीनाथविलास', एवं 'रसरत्नमाला' को कुछ विद्वानों ने सूरति मिश्र कृत माना है, किन्तु न तो ये रचनाएँ उपलब्ध हैं और न इस तथ्य का ही कोई संकेत किसी भी स्रोत से मिलता है कि सूरति मिश्र ने इनकी रचना की थी। बैताल-

पच्चीसी के सम्बन्ध में खोज-विवरणों में यह भ्रांत तथ्य मिलता है कि खड़ी बोली में उपलब्ध उसकी प्रतियाँ सूरति मिश्र की रचना हैं और यही भ्रांति उन संस्करणों से भी उत्पन्न हुई है, जो बहुत पूर्व लिथो-मुद्रणालयों से प्रकाशित हुई थीं। वस्तुतः यह बात सत्य नहीं है। वैतालपच्चीसी' का उपलब्ध रूप लल्लूलाल कृत खड़ी बोली रूपांतर है तथा सूरति मिश्र कृत 'वैतालपच्चीसी' का अनुवाद व्रजभाषा में था, जो अब उपलब्ध नहीं हैं।

सूरति मिश्र के ग्रंथों का परिचय प्राप्त करते समय भी कई नये तथ्य हमारे सामने आए हैं, जिनसे पूर्व-विद्वानों द्वारा प्रस्तुत ज्ञान का संशोधन होता है। उदाहरणार्थ, विद्वानों में यह धारणा थी कि सूरति मिश्र ने अपनी सभी टीकाएँ पद्य में लिखी हैं, केवल यत्र-तत्र वार्ताओं के रूप में कुछ गद्य मिलता है। किन्तु हमारे अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि 'रसरत्न' एवं 'जोरावर-प्रकाश' की टीकाएँ गद्य में लिखी गई थीं और उनमें प्राप्त गद्य का स्वरूप मिश्र जी की गद्य-शैली की प्रौढ़ता का परिचायक है। एक अन्य नया तथ्य जो भक्ति-विनोद का परिचय देते समय सामने आया है, वह यह है कि सूरति मिश्र ने शिव और शक्ति की भक्ति में भी कविताएँ लिखी हैं, जबकि यह माना जाता था कि उन्होंने इन दोनों देवताओं की उपेक्षा की है।

सूरति मिश्र के जीवन परिचय के सम्बन्ध में अब तक कोई सामग्री उपलब्ध नहीं थी। हमने उनके ग्रंथों से जो तथ्य एकत्र किए हैं, उनसे यह सिद्ध है कि उनका जन्म फाल्गुन मास में शुक्ल पक्ष की सप्तमी को संवत् १७३१ वि० में आगरा में हुआ था। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के इटावा नगर में रहते थे, जहाँ से सूरति के पिता सिंहमणि आगरा आकर बसे थे। जाति से वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके परिवार में वेदशास्त्र के अध्ययन की परम्परा चली आ रही थी। विद्वानों और साधुओं का सत्संग करके सूरति मिश्र ने विद्याओं और शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया। जीविकोपार्जन के लिए वे जहाँना-बाद, दिल्ली, मेड़ता, बीकानेर आदि स्थानों पर रहे। काव्य-रचना के अतिरिक्त आश्रयदाता को काव्यशास्त्र की शिक्षा देना उनकी रुचि का कार्य था। उनका अंतिम आश्रयदाता अमरसिंह था, जो बीकानेर के महाराजा गजसिंह का ज्येष्ठ भ्राता था। महाराजा जोरावरसिंह की मृत्यु के पश्चात् वे कुछ समय तक उसके आश्रय में रहे थे।

सूरति मिश्र का स्वभाव सरल और उदार था। वे ईश्वर में पूर्ण आस्था रखते थे तथा समस्त संसार को उसकी रचना मानकर, चारों ओर फैले हुए सौन्दर्य पर रीझते थे। उनकी ईश्वर-विषयक आस्था बहुत व्यापक

थी। वे सभी देवी-देवताओं और प्रकृति के विभिन्न रूपों को भक्ति की भावना से देखते थे। राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलाएँ उनकी उपासना का मुख्य केन्द्र थीं। अपने जीवन में उन्हें पर्याप्त सम्मान मिला। राजाओं और अमीरों ने उन्हें अपना गुरु बनाया तथा कवि-समाजों में भी उन्हें प्रतिष्ठा मिलती रही। अमरचंद्रिका में उल्लिखित रचना-काल के अनुसार वे संवत् १८१५ वि० तक जीवित रहे।

सूरति मिश्र ने सत्रह ग्रंथों की रचना की थी, जिनके नाम हैं —रामचरित, श्री कृष्णचरित, दानलीला, रासलीला, अलंकारमाला, रसरत्न, नखसिख, भक्ति-विनोद, रसगाहकचंद्रिका, कामधेनु-कवित्त, छंदसारपिंगल, काव्यसिद्धान्त, अमरचंद्रिका और प्रबोधचंद्रोदय-भाषा। इन ग्रंथों में सूरति मिश्र की साहित्य साधना को भावना और चिन्तन के स्तर पर पूर्णता प्राप्त हुई है। उन्होंने ईश्वर-भक्ति को अपना लक्ष्य बनाया था और काव्यशास्त्र का विवेचन करके वे एक ओर काव्य-रचना के सिद्धान्तों से सम्बन्धित अपने चिन्तन को अभिव्यक्त करते रहे और उसके माध्यम से वे अपनी जीविका भी चलाते रहे।

सूरति मिश्र रीतिकाल में उस समय पैदा हुए थे, जब अत्याचारों की नींव पर खड़ा किया गया औरंगजेब की सत्ता का भवन धराशायी होने लगा था। नादिरशाह के राक्षसी अत्याचारों के कारण चारों ओर भय और अनास्था का वातावरण छाया हुआ था। समस्त देश में राजनैतिक अव्यवस्था पनप रही थी। साहित्यकार छोटे-छोटे राजाओं और अमीरों के महलों में भी विलास देखकर आश्रय पाने के लालच में शृंगार-रस की कविताएँ लिख रहे थे। सूरति मिश्र ने अपने युग की चुनौती को स्वीकार किया। वे आश्रयदाताओं के यहाँ रहे, किन्तु ईश्वर-भक्ति और शास्त्र-चर्चा से आगे उनकी कविता नहीं गई। शृंगार के प्रेम-तत्व को तो उन्होंने अपनाया, किन्तु राधा-कृष्ण की भक्ति को उसकी सीमा बना दिया।

सूरति मिश्र के समस्त साहित्य के दो अंग हैं—काव्य और काव्य-सम्बन्धी सिद्धान्त। काव्य के अन्तर्गत उनकी रामचरित, श्रीकृष्णचरित, दान-लीला, रासलीला, नखशिख और भक्ति-विनोद नामक कृतियों का समावेश किया जा सकता है। अलकारमाला, काव्य-सिद्धान्त, छंदसारपिंगल, कामधेनु-कवित्त और रसरत्न की रचना उन्होंने काव्यशास्त्र को सुबोध बनाने के लिए की है। उनका यही दृष्टिकोण जोरावरप्रकाश, रसगाहकचंद्रिका, अमरचंद्रिका-टीका एवं रसरत्न-टीका के पीछे भी निहित दिखाई देता है। जहाँ तक प्रबोधचन्द्रोदय

भाषा का प्रश्न है, वह एक अनूदित रचना होने पर भी काव्य की सीमा में ही आती है। वैतालपच्चीसी की रचना गद्य में होने के कारण हम यह मान सकते हैं कि सूरति मिश्र एक गद्यकार के रूप में कथा-लेखन के क्षेत्र में भी प्रवेश कर रहे थे। उनकी यह कृति अपने समय में पर्याप्त लोकप्रिय रही होगी, तभी लल्लूलाल ने उसका खड़ी बोली में रूपांतर किया एवं उस नये रूप में कई लिथो-मुद्रणालयों से उसका प्रकाशन हुआ।

सूरति मिश्र मूलतः एक कवि थे। काव्य के अन्तर्गत हमने जिन कृतियों का समावेश किया है, उनमें रामचरित, श्रीकृष्णचरित, रासलीला, दानलीला, आरम्भिक रचनाएँ सिद्ध हुई हैं। इन रचनाओं में सूरति मिश्र की ईश्वर-भक्ति का प्रबन्ध और मुक्तक दोनों शैलियों में चित्रण सम्मिलित है। रामचरित में उन्होंने भगवान रामचन्द्र के शैशव से लवकुश-युद्ध तक की घटनाओं का वर्णन किया है। यद्यपि इस वर्णन में घटना-परिगणन मात्र को स्थान मिला है तथा काव्य-गुण की दृष्टि से यह कोई महत्वपूर्ण कृति नहीं है, तथापि कवि की प्रबन्ध-प्रियता और उसके माध्यम से भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का प्रमाण मिलता है। श्रीकृष्णचरित में वसुदेव और देवकी के घर भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म लेने से सुदामा की मैत्री और कुरुक्षेत्र में ब्रजवासियों से भेंट होने तक की मुख्य घटनाओं की संक्षेप में चर्चा है। यह कृति भी काव्य-गुण की दृष्टि से सामान्य होने पर भी कवि के प्रबन्ध-कौशल और ईश्वर-विषयक प्रेम का परिचय देती है। दानलीला एवं रासलीला कृतियों में श्रीकृष्ण और गोपियों की विभिन्न सात्विक प्रेम-लीलाओं का मुक्तक शैली में चित्रण किया गया है। इन दोनों कृतियों में कवि ने विवरण देने की प्रवृत्ति का त्याग करके भावपूर्ण रोचक स्थलों के वर्णन में तन्मयता दिखाई है। व्यंजना-पूर्ण सम्वाद और विषय को प्रस्तुत करने की रोचकता के कारण इन दोनों कृतियों में रामचरित और श्रीकृष्णचरित की तुलना में काव्य-गुण अधिक मात्रा में मिलता है। नखशिख में राधा के चरणों से शिख तक का सौंदर्य मुक्तक शैली में अलंकार-सौन्दर्य के साथ भक्ति की पृष्ठभूमि पर चित्रित किया गया है। मिश्रजी ने अंग-शोभा, उसमें वृद्धि करने वाले आभूषणों तथा दोनों के सम्मिलित प्रभाव का रोचक वर्णन किया है। भक्ति-विनोद में उनकी काव्य-प्रतिभा को एक विस्तृत और व्यापक आयाम मिला है। रीतिकाल तक की समस्त भक्ति-काव्य धारा ने इस काव्य की भाव-भूमि को स्थायी संस्कार दिये हैं, इसलिए ईश्वर के सम्बन्ध में कवि की आस्था और विश्वास का व्यापक चित्रण हुआ है और उसके माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की गहरी व्यंजना मिलती है। रीतिकाल में लिखे गये भक्ति-काव्यों में विषय-प्रतिपादन, भाव-व्यंजना तथा अन्य काव्य-गुणों की दृष्टि

से इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य की मुक्तक शैली और आलंकारिक व्यंजना-पूर्ण भाषा के माध्यम से अत्यन्त व्यापक रूप में प्रस्तुत करने वाली भक्ति-सम्बन्धी यह रचना सूरति मिश्र को श्रेष्ठ कवियों की श्रेणी में स्थापित करती है। इस कृति में कवि का जीवन-दर्शन लोक और परलोक की विभिन्न व्यावहारिक भूमियों का गहराई से स्पर्श करता है, जिसके कारण भाव के क्षेत्र में ही नहीं वैचारिक क्षेत्र में भी सूरति मिश्र का कवि-रूप गरिमा के उच्चतम सोपानों तक पहुँचता दिखाई देता है। 'प्रबोधचंद्रोदयभाषा' संस्कृत में लिखित श्रीकृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' का रूपान्तर है, किन्तु उसमें भी कवि की काव्य-प्रतिभा और जीवन-दृष्टि–सम्बन्धी उच्चता परिलक्षित होती है। सूरति मिश्र के ये सभी काव्य सरल ब्रजभाषा में लिखे गये हैं, जिसमें तद्भव शब्दावली के साथ देशज और तत्सम शब्दों को बड़ी निपुणता से स्थान दिया गया है। छंद-रचना-सम्बन्धी कौशल का भी इन कृतियों में अभाव नहीं है। दोहा, हरिगीतिका, कवित्त, सवैया आदि कई लोकप्रिय छंदों का कवि ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। भाषा और छंद दोनों को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कवि ने सहज ढंग से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टान्त, काव्यलिंग आदि अर्थालंकारों एवं अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों को को अभिव्यक्ति का सफल उपकरण बनाया है।

कवि के रूप में सूरति मिश्र का हिन्दी-साहित्य में जैसा महत्वपूर्ण स्थान है, वैसा ही महत्वपूर्ण स्थान एक आचार्य के रूप में भी उन्हें मिलना चाहिए। अलंकारमाला, रसरत्न, कामधेनु-कवित्त, छंदसारपिंगल और काव्य-सिद्धान्त नामक कृतियों में उन्होंने अलंकारों, रस–विवेचन सम्बन्धी आवश्यक तथ्यों, छंदशास्त्र के प्रमुख प्रसंगों एवं महत्वपूर्ण छंदों के नियमों तथा काव्य-रचना के आधार-भूत सिद्धान्तों का संक्षेप में सूत्रात्मक ढंग से चित्रण किया है, जिससे उनके काव्यशास्त्र सम्बन्धी पांडित्य का परिचय मिलता है। यद्यपि उनके विवेचन में सैद्धान्तिक मौलिकता अधिक नहीं है, किन्तु विषय को सरल, रोचक और सूत्रात्मक बनाकर प्रस्तुत करने एवं स्व-रचित उदाहरण देने के कारण उनकी इन कृतियों का रीतिकालीन काव्यशास्त्र के क्षेत्र में एक विशेष स्थान माना जाएगा। "बिहारी-सतसई" की "अमरचन्द्रिका-टीका" में भी सूरति मिश्र ने अलंकारशास्त्र के गंभीर ज्ञान का तो परिचय दिया ही है, साथ ही बिहारी के दोहों में मिलने वाले अलंकारों के लक्षण भी यथा-संभव विद्वत्तापूर्वक प्रस्तुत किए हैं। बिहारी की भाव-व्यंजना को अलंकारों के माध्यम से उसकी पूरी गहराई में स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता उस टीका में व्यक्त हुई है।

"कविप्रिया-टीका" में यद्यपि अधिक विस्तार नहीं है, केवल महत्वपूर्ण स्थलों की ही पद्य में व्याख्या की गई है, तथापि उससे भी मिश्र जी की अर्थ-बोध-क्षमता और काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान-गम्भीरता का प्रमाण मिलता है। इसी प्रकार "रसगाहकचन्द्रिका" में पद्य में केशवकृत "रसिकप्रिया" के गंभीर स्थलों को सरल ढंग से स्पष्ट किया गया है। "जोरावरप्रकाश" में प्रवाह-पूर्ण साहित्यिक गद्य में "रसिकप्रिया" को समग्ररूप में विस्तृत व्याख्या का विषय बनाकर सूरति मिश्र ने काव्यशास्त्र को समझने तथा समझाने का जो प्रयास किया है, उससे केशवदास के विषय-विवेचन को काव्यशास्त्रीय क्लिष्टता और गम्भीरता की परिधि से बाहर निकलना पड़ा है। इस कृति के आधार पर सूरति मिश्र को हिन्दी गद्य के आरम्भिक निर्माताओं में महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है। "रसरत्न-टीका" में भी उसी गद्यशैली का सहज प्रयोग उनकी गद्य-लेखन-कला का परिचायक है और साथ ही साथ इस तथ्य का भी समर्थन करता है कि सूरति मिश्र काव्यशास्त्र-सम्बन्धी सिद्धान्तों को रचना के स्थान पर ही नहीं, व्याख्या के स्तर पर भी सरल ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। संस्कृत से हिन्दी तक भारतीय काव्यशास्त्र की जो अखण्ड परम्परा विकसित होती आ रही थी, उसके पुरस्सरण और प्रस्तार में सूरति मिश्र की प्रतिभा ने उल्लेखनीय योग दिया है। भरतमुनि से लेकर पंडितराज जगन्नाथ तक के काव्य-सिद्धान्तों का तत्व खींच कर सूरति मिश्र ने जो विवेचन प्रस्तुत किया, वह अपने आप में पूर्ण और प्रभावोत्पादक है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों की पंक्ति से अलग बैठकर उन्होंने काव्य-रचना के प्रमुख सिद्धान्तों तथा रस, अलंकार और छंद का विशेष रूप से जो चित्रण किया है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्य के अंतरंग गुण के रूप में वे रस को महत्व देते थे और अलंकार तथा छंद को उसकी शोभा-वृद्धि के लिए आवश्यक उपकरण मानते थे। यदि ध्यान से देखा जाए तो विभिन्न काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदायों के बीच से होकर निकलती हुई काव्य-सिद्धान्तों की अखण्ड धारा में छद और अलंकार से परिपुष्ट रस की ही सर्वाधिक स्वीकृति रही हैं और इस ऐतिहासिक तथ्य को अपनी कृतियो में समाविष्ट करके सूरति मिश्र ने एक रसवादी आचार्य के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

हिन्दी साहित्य में क्लिष्ट काव्यों की व्याख्याओं और उनके गूढ़ार्थों का भावबोध कराने के लिए भी सूरति मिश्र की रचनात्मक प्रतिभा का सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। जहाँ एक ओर उन्होंने हिन्दी में उत्कृष्ट साहित्यिक गद्य लिखने का सूत्रपात किया और गद्य-भाषा को अभिव्यंजना की प्रौढ़ता प्रदान की, वहीं दूसरी ओर उन्होंने व्याख्या और गद्य-शैली के माध्यम से

अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दी-आलोचना की व्याख्यात्मक शैली को भी प्रस्तावित किया। "जोरावरप्रकाश" में टीका के माध्यम से उनकी आलोचना-प्रतिभा को भी पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। गद्य में ही नहीं अमरचन्द्रिका की गद्य-शैली में भी कई स्थानों पर हमें आलोचना की तार्किक शैली का आभास मिलता है।

अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी-साहित्य के विकास में सूरति मिश्र का योगदान अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। उन्होंने रीतिकाल में उत्कृष्ट कोटि का शुद्ध भक्ति-काव्य लिखा है। शृंगार-रस की अभिव्यंजना को उन्होंने सहज एवं सात्विक प्रेम का आधार प्रदान किया है। प्रकृति के प्रति उनकी दृष्टि उन्मुक्त तथा सहज सौन्दर्य-ग्राहिणी रही है। जीवन के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्षों का उल्लास उनकी भाव-व्यंजना को गरिमामय बनाता है। काव्य-शास्त्र को सरल तथा सुबोध ढंग से प्रस्तुत करके उन्होंने कवियों के लिए काव्य-रचना का पथ ही प्रशस्त नहीं किया, अपितु काव्य की गम्भीरता तक पहुँचाने के लिए पाठकों को भी सुगम साधन प्रदान किया है। उन्होंने अलंकार रस, छन्द आदि के नियम तो सरल शैली में प्रस्तुत किये ही हैं, साथ ही स्व-रचित उदाहरण देकर अपनी अभिव्यक्ति-गत मौलिकता भी प्रकट की है। इस प्रकार काव्य और काव्यशास्त्र दोनों के विकास में उन्होंने समान रूप से योग दिया है। संस्कृत के श्रेष्ठ तथा लोकप्रिय ग्रन्थों के अनुवाद और हिन्दी के क्लिष्ट काव्यों की टीका करने की परम्परा को आगे बढ़ाने एवं ब्रजभाषा-गद्य को साहित्य-रचना की सामर्थ्य से समन्वित करने के लिए भी वे सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। जब तक हिन्दी भाषा और उसका साहित्य जीवित है, तब तक सूरदास, मीरा, रसखान आदि भक्त-कवियों तथा चिन्तामणि, पद्माकर, मतिराम, देव, कुलपति, सोमनाथ आदि आचार्यों की पंक्तियों में उनका गौरवपूर्ण स्थान सुरक्षित रहेगा। साथ ही, हिन्दी साहित्य के अध्येता इस तथ्य को भी कभी विस्मरण नहीं कर सकते कि सूरति मिश्र हिन्दी-गद्य के निर्माताओं में लल्लूलाल, सदल मिश्र, सदासुखलाल एवं इन्साअल्लाखाँ से भी पूर्व अत्यन्त आदर-पूर्ण स्थान पाने के अधिकारी हैं।

———

नख - सिख

नख-सिख

मंगलाचरण

चरन चतुर्भुज के चिह्न ह्वै करत सेवा,
रमा के सुखद गृह-रूप दरसात हैं।

आसन ह्वै विधि हू रिझायौ, पै न बनी विधि,
'सूरति' सुकवि वातें जग में विख्यात हैं।

सुनिये हौ लाल ! उहिं बाल-पग-समता कों,
कीनौं बहुतेरौ पै न भए वारिजात हैं।

ऐसी कौन, जाके हिय धीरज धिराइ वाके—
पाँइ देखें काहू के न पाँइ ठहरात हैं ।।१।।

जावक

किधौं सब जग की अरुनताई हारी
ताकौ आइकें रजोगुन चरन अनुराग्यौ है।

किधौं पद-कंजनि कौं सेवति है गिरा वहै
पूर हित जाके देखें अंध-पुंज भाग्यौ है।

"सूरति" सुकवि जानि परी यह वात अब,
तोहि बूझिये न को हू मान-रिस पाग्यौ है।

जावक न होइ सुनि प्राण-प्यारी तेरे यह,
प्रीतम कौ अनुराग आइ पाँइ लाग्यौ है ।।२।।

१—ह्वै=होकर; विधि हू=ब्रह्मा को भी; वातें=उस कारण से; सुनिये हो लाल=हे लाल ! सुनिये ('ख' प्रति में—सुनि पैहौ लाल पाठ है)। उहिं=उस; धिराइ=धारण हो ('ख' में 'थिराई' पाठ)।

२—ताको=उसका; पूर=पूर्ण, पाँइ= पैर, चरण।

चरणांगुलि-भूषण

पायनि की अंगुली ए, संगु लिएँ सोभा सबै,
ढंगु लिये छीनि चंप कलिका बरन के।
अनवट मानौं काम-भट एक वंचक-से
परे हैं सुभाइ जिन्हें घाइल करन के।
महि या तौ व हिया सौ गहि राखैं "सूरति" ए,
कैसे चले वाट वटु धीरज हरन के।
एते पै अनीति वडी, देखत ही नेकु मारि—
मन कों विधाइयत विछिया चरन के ॥५॥

अनवट

देखि तेरौ वदन मदन जव हारचौ मन
तव उनि ऐसे कै विचारि मत कीनी है।
जेती हतियारनि की सौंज हती गेह तेती,
सौपि सब दीनी तेरे अंगनि नवीनी है।
नैंननि कौं सर, भृकुटीनि को धनुष भाव,
तीछन कटाछ असि भाव फाँसी लीनी है।
अनवट होंहि ना ए, वाहि समै काम नैं
अँगूठनि कों कंचन की ढालैं सौपि दीनी हैं ॥६॥

५—पायनि की=पैरों को ('ब' प्रति में चायनि की); परे हैं=पड़ गए है, सुभाइ=स्वभाव, चलतौ=चलते हुए, बिधाइयत "ख" प्रति में विछाइयत है।

६—जेती=जितनी, हारचौ=हार गया। भाव=मनोभाव, ए=ये, वाही=उसी।

पद–नख

चंद-अनुहारि, छिनि रवि की अरुनताई,
जीते जोतिवंत, स्वच्छ रूप विलसत हैं।
जेती जग नारि ते निहारि नारि नीची करैं,
सवै ही कैं प्रतिबिम्ब तिनमें लसत हैं।
'सूरति' श्री बृन्दावन-मनी कौ चरन-संग,
पाइवे कौ बिंब आभावंत दरसत हैं।
साँची कहनावति इहाँई देखी लाल, सवै—
जगत के रूप जाकै नख में वसत हैं ।।३।।

एड़ी

कोंमल अमल रुचि राजति रजत रूप
अति ही अरुन होत भूमि के परस तैं।
मानों दरसत गति गजराज कुंज ते,
कुसंभ जल मेलि भरे चंदन सरसतैं।
जिनकी न उपमा को 'सूरति' वखानी जाति,
कहा कहौं आली कही आवतु तरस तैं।
ऐसौ कौन चलि सकै डग भरि पंगु पगु,
वेड़ी-सी परति तेरी एड़ी के दरस तें ।।४।।

३—छिनि = छीन कर; जेती = जितनी; नारि = स्त्रियाँ; नारि = गर्दन; पाइवे कों = प्राप्त करने के लिए; साँची = सत्य; इहाँई = यहीं पर; जगत के ('ख' प्रति में 'जगन के')।

४—कही आवतु = कथन संभव होता है; परति = पड़ जाती है।

नुपुर

झूमति रानी चलै जब हीं, तब
बैस पै रीझ कैं फूल बिढारिये।

देखत गाइक बेलि उठें
जिनके कल गान सु बोल उचारिये।

"सूरति" हैं किधों जीति के वाजन
और कहा उपमा यों विचारिये।

जेती कछू छवि है इहि भू पर
तेरे ही नूपुर ऊपर वारिये ।।७।।

पाइजेब

किधौं रतिरानी उर हार पीत फूलनि के,
किंधौं कदली के अंग कंचन की बेलैं हैं।

किंधौं कमला के गेह बाँधी अति सोहति हैं
पीत मनि-तोरनि, उठति छवि रेलैं हैं।

'सूरति' सुकवि छवि कहाँ लौं बखानों नेंकु
देखत ही एरी मन सबके सकेलें हैं।

तेरे पाँइ परी ए न पाइजेब आली किधौं
गति गजराज, गरे हेम की हमेलें हैं ।।८।।

७—'ख' प्रति में 'यों रतिरानी चलै' प्रथम पंक्ति का आरंभिक पाठ है। तृतीय पंक्ति में "वाजन" के स्थान पर "गाजन" है। जेती=जितनी, इहि=इस, वारिये निछावर कीजिए, तुच्छ है।

८—गरे=गले,

जेहरि

किधों रति-पति रची गति गजराज पैं ए
हेम की अँवारी सम धारी सुविचारि कैं।
किधौं तन-मंदिर में आभा चढ़िवे की सिढ़ी,
कीनी काम कारीगर कंचन सुधारि कैं।
'सूरति' वनी है तेरे पग पैंजनि की सोभा,
कहा हौं वखानों कही जाति न उचारि कैं।
जे हरि सकल जग-मोहन कहावत हैं,
ते हरि तौ मोहे तेरी जेहरि निहारि कैं ॥६॥

गति

जव तूँ चलति धाइ धरनि धरति पाँइ,
नहिं लखि पाइ, कौन धीरज धरतु है।
जिनकी चलनि को वखान कवितानि कहै
तिनको तो चित्त पृहा-दाहनि मरतु है।
एक भागि जात मानसर मान भंग जानि
एक रज डारि सीस धुनिवो करतु हैं।
ए री व्रज-वाल गजराज औ मराल तेरी
सुनत ही चारु चालि चालनों परतु है ॥१०॥

कटि

चंदन के फूल जैसे काहू न 'निहारयौ कहुँ,
जो पै महो, तो वौ कैसें फल दिखरात हैं।
देहिनि में सकति निहारि न सकत कोऊ,
होइ न तौ कैसें जीव क्रिया जुत गात हैं।
मदन अनंग कै अनंगी विधि कीनी यह,
'सूरति' जगत मोहिवे कौं अधिकात हैं।
सूझै मनि-पट, कोऊ देखें न प्रगट,
तेरी कटि सुनें सव ही के मन कटि जात हैं ॥११॥

९—सिढ़ी=सीढ़ी, कीनी=वनाई, कि=या, हौं=मैं, ते=वे,
१०—पृहा=स्पृहा।
११—देहिनि=शरीर-धारियों, जुत=युक्त, कै=करके, कटिजात है=कट जाते हैं, मुग्ध हो जाते हैं।

त्रिवली

किधौं मनमथ के ए रथ के सुचक्र चले,
तिनकी की लीकें उर भू पै जानी तौंन है।
किधौं मैन ठग की ए गली भली ठगिवे की
किधौं रूप-नदी तीन धार कियौ गौंन है।
"सूरति" सुकवि देखि मोहे मन मोहन जू
यातें मैं हूँ जानी, एई मोहिवे के मौन हैं।
एक बली सब ही कौं वस करि राखतु है,
त्रिबली करै जो बस अचरज कौन है ॥१२॥

रोमराजी

किधौं यह पान पै वसीकरन मन्त्र लिख्यौं,
देखि छबि मोहै कोऊ विद्या पंचसर की।
हृदय-सरोवर सिंगार-जल भरयौ कैंधों,
उमड़ि चल्यौ है नाभि-कुंडिका गहर की।
छोटे-छोटे आखरनि अबला लिखाए ये तौ,
अपनी सबलताई "सूरति" समर की।
जिनें देखें नैंननि की गति-मति भाजौ यह,
तेरी रोम-राजी किंधौं बाजी बाजीगर की ॥१३॥

१२—लीके=लकीरें, पहियों के चलने के चिह्न, गौंन=गमन वली=वलवान।

१३—देखि छवि='ख' में देखत ही, आखरनि=अक्षरों में। यह छंद सरदार कवि के शृंगार-संग्रह में भी संकलित किया गया है।

उरोज

किधौं हारि सरवर पार चक्रवाक बैठे,
जामें-निसि देखें मुख रजनीकरन के।
किधौं हेम-लता बीच आनन्द के फल दोऊ,
लागि रहे हठि काम आयत रहन के।
किंधौं द्विभुवन जीति समर समर धरे,
उलटि निवारे छवि "सूरति" धरन के।
देखत ही अंग अंग व्यापत मनोज आली,
तेरे री उरोज कि सरोज सुवरन के ।।१४।।

हाथ

किंधौं हैं रसाल दोऊ कर कमलनि सम,
जिन्हे देखि नन्दलाल धीरज नहीं गहै।
रतन जड़न की अँगुली में अनूठी देखी,
छलौ को न छला आरसी सो आर-सी वहै।
धौरे-धौरे पीरे हरि महँदी के रंग बीच,
तिन की निकाइ कवि "सूरति" सु को कहे।
कहा कहौं गाथ वाकौ रतिनाथ साथ कीन्है,
तेरे हाथ देखि कौन हाथ अपने रहै ।।१५।।

कर-भूषण

जौतिनु सौं मौतिनु के गजरा जु राजे ते ए—
मनु गजराजु गति राखैं तरु धारि कैं।
देहि कैं रतन चोक चौकस रहे सु को,
जड़ सम होइ सुधि बुधि हूं विसारि कैं।
तेरे कर भूषणनि मोहे व्रजभूषन जू,
"सूरति" हौ भेद कहा कहौं विसतारि कैं।
कंचन तो संकन करत मोहिबे में अरु,
पहुँचै को घर तेरी पहुँची निहारि कैं ।।१६।।

१४—जामें-निसि=दिनरात, समर-समर=काम देव ने युद्ध में।

१५—छला को न छला=छला (आभूषण) ने किसे नहीं छला या छला के द्वारा कौन नहीं छला गया, धौरे-धौरे=श्वेत-श्वेत, गोरे=गोरे, निकाई=सुन्दरता।

१६—जोतिनु सों ज्योतिषियों से, चौकस=सावधान।

कर-भूषण

किधौं सतधार है कालिन्दी परिक्रमा देति,
रमा कंज जानि तानौ ऊरध सुहित कौं।
किधौं नीलपट्ट माहिं कसी कमलनि-सोभ,
कै सरोज वसैं रास रस कियौ तितकों।
'सूरति' सुकवि छवि कहां लौं वखानौं कैसी,
गोरे कर राजै स्याम रंग लै अमित कौं।
एरी चंदमुखी मेरे चितामनि चातुर को,
तेरी चारु चूरु ए चुराए लेति चित्त कौं ।।१७।।

भुज-मूल

तेरे भुज मूल जिन्हें उपमा न तूल, देखें
होति, अति भूल, सधि जाति उठि गात तें।
बाँह से उतारि देखि रीझै हरि प्यारे सुर,
तरु मद डारे, डारे तेजु करि घात तैं।
"सूरति" सुकवि किधौं फाँसी मनमथ जूकी,
तामें अचरज एक बड़ौ इहि बात तैं।
जो न गरै परै तौ तौ प्राननि कौं हरै अरु,
गरै जब परै तब राखै प्रान जात तैं ।।१८।।

पीठ

किधौं यह केस लैकें रस को नरेश वारण,
देख री सुदेस सुठि सोभा रसभीनी है।
किधौं यह मदन की पाटी मंत्र पढ़िवे की,
"सूरति" सुकवि वनी हाटक नवीनी है।
जीवन के मन्दिर की भाँति हेम ढारि किधौं,
रुचि सों वनाइ राज रति राज कीनी है।
ऐरी मेरी तेरी यह पीठि नेंक दीठि भरि,
देखि भई ईठि सब ही कों पीठि दीनी है ।।१९।।

१७—चूरी=चूड़ी ।

१८—तूल=समात, जाततें=जाने से, नष्ट होने से ।

१९—सुठि=सुन्दर, नेंक तनिक ।

ग्रीवा

कंबु औ कपोत होत कैसे बापुरे ए सम,
यातें छिन-छिन छवि नई सरसति है ।
सोभा की तिरेख तापें सोहति विसेष मानौं,
सुरनि के गराणि की पाँति बिलसति है ।
"सूरति" सुकवि जीति तिहूँ लोक छबि,
तिन की ये मानौ रेख कीनी तेई ए लसति है ।
सुनि प्रानप्यारी कछु झूठ न कहत सब,
छबिन के सींवा तेरी ग्रीवा में बसति है ।।२०।।

तिल

एरी सुखदाई तेरी चिबुक की स्यामताई,
ताकी उपमा की कवि-कुलकें रढ़नि है ।
किधौं कंज कोरे लागि रह्यो है मधुप-सुत,
भूल्यौ रस-मत्त होति कैसे कैं कढ़नि है ।
किधों चंद अंग निसि-अंजन की बूँद सोहै,
"सूरति" चकोर देखि सुख की मढ़नि है ।
अचरज बड़ो आली तिल तौ है तेरे अरु,
स्याम जू के नैंननि में नेह की बढ़नि है ।।२१।।

मुख

तेरी मुख समता कों एक मिल्यौ सविता कों,
एक विधि मिल्यौ, विधि ग्रन्थनि बतावहीं ।
एक सेयौ सिन्धु एक सिंधु की सुता कों सेयौ,
सुर अलि पोखे दान देखे जो जनावही ।
"सूरति" यों दोऊ बहुतेरो करि हारे सुनौ,
एहो ब्रजरानी बानी सब जग गावहीं ।
पैज बाँधी, सधी नहिं यातें चंद कंज देखौ,
आज हुँ लौं, आपुस में मुख न दिखावहीं ।।२२।।

२०—तिरेख=तीन रेखाएँ, सींवां=सीमा ।

२१—रढ़नि वार-बार दुहराना, कढ़नि मुक्ति, मढ़नि=मण्डित होना, वढ़नि=विकास ।

२२—पैंज बाँघी=प्रतिज्ञा की, सघी नहिं=पूरी नहीं की जा सकी ।

अधर

जीत्यौ मधुराइते सु धाइ सुर-लोक छिप्यौ,
ऊष औ मयूष को, सु छिपे हैं, अरनि मे।
देखत ही विद्रुम भए हैं जड़ रूप अरु,
बिम्ब मति-हीन भए जिनकी दरनि में।
पान रंग पातरयो भयो है तव ही ते यह,
एरी ब्रजरानी अब रह्यो को सरनि में।
'सूरति' सुकवि तिन्हें सकै को बरनि प्यारी,
तेरे अधरनि कों न उपमा धरनि में ।।२३।।

दसन

किधों मुख चन्दे कला धरी है छिपाइ देखि,
दूनी द्विजराज हियें सहैं ताप भारे हैं।
हिरन की पाँति हेम संपुट में धरी किधों,
पूजाहित रमा द्विज रोह बयठारे हैं।
सुधा पियें जियें प्यारी बोल सुनि लिये ही तें,
यही तें विचार कवि, 'सूरति' विचारे हैं।
तेरी रसना में कोऊ अद्भुत अमृत बसै,
मानो ताके आसपास बैठे रखवारे हैं ।।२४।।

रसना

किधों विधि रचना की रची है कसौटी यह,
अरुन वरन अचरज मन है रह्यौ।
किधौं तेरी वानी ठकुरानी मनमानी ता की,
राती फूल सेज रंग जात न कछू कह्यौ।
'सूरति' सु किधौं बोल रतन अमोल दान
दे दे सव ही कों सुख दुख सब ही दह्यौ।
नेक हू बखानि सकै काहू को सु बस ना जु,
रस तेरी रसना सु रस ना कहूँ लह्यौ ।।२५।।

---

२३. ते-वह, धाइ=दौड़कर, ऊष=गन्ना, मयूष=शहद
अरनि, अरण्य, जंगल। सरनि=समता।

२४. वयठारे=विठाए हैं।

२५. 'हैरह्यो' के स्थान पर "ख" प्रति में 'गह रह्यो' है।
सु बस ना=ऐसी सामर्थ्य नहीं।
यह छंद सरदार कवि श्रृंगार-संग्रह में भी संकलित किया गया है।

हँसी

किधौं चंद बीच कोउ दामिनी दमकि उठे,
देखि मोहि भूली सुधि, तुक कैसे रखि है।
किधौं रवि दीनी एक कला सखा आपने कौ,
सोई उठे चमकि सु देखें लीक नखि है।
'सूरति' सुकवि छवि देखत ही लाल फेरौ,
आपने औ पर तुम कोहू न परखि है।
नैक ताकी बोलनि लखे तो तन फांसी भई,
हाँसी मोहि आवै वाकी हांसी कैसे लखि है ।।२६।।

नोट—यह छंद सरदार कवि के शृंगार–संग्रह में भी संकलित किया गया है।

बानी

जाको एक अंस हंसवाहिनी प्रसंसति है,
किन्नरी सु कौन जाकी नेकौं सर करि है।
और कोकिला सौ को कला हू एक जाने नाहिं,
'सूरति' सुकवि गनती मैं कौन धरि है।
बीना बेनु तब लौं बजाइ लीजै प्यारे लाल,
फेरि तुम्हें आन हूँ को चरचा बिसरि है।
सुधि बुधि सकल हिरानी जैहै जानि हूँ यों,
कहूँ मेरी रानी जू की बानी कान परि है ।।२७।।

कपोल

तेरे ये कपोल बाल अति ही रसाल, मन–
जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोऊ न समान जाहि कीजै उपमान अरु,
बापुरे मधूकनि की देह जारियत है।
नैक दरपन समता की चाह करी कहूँ,
भए अपराधी ऐसै चित्र धारियत है।
'सूरति' सु याही तें जगत बीच आज हू लौं,
उनके बदन पर छार डारियत है ।।२८।।

---

२६ लीक=रेखा, नखि हो पार करना। आपने औ पर=अपना और पराया। बोलनि बोलने का ढंग।

२७. नेंकौ थोड़ी भी, कौ-कौन, कुछ नहीं। कलाहू कला भी।

२८. मधूकनि="ख" प्रति में मधुकनि। याही तें=इसी से।

नासिका

तरुनि की नासिका को सोभा वरनी न जाइ,
जाकी समता के रूप कोऊ न पढ़त हैं ॥
किधौं मन-मीननि की बंसी बंसीधर की सो,
किधौं चंद पूज्यौ नित फूल यों रढ़त हैं ॥
'सूरति' सुकवि उपमा न जाहि धरनी में,
एक मन आई देखि आनँद बढ़त है ।
काम तरकस मानौ उलहि धरयौ है पर,
अचरज बड़ौ तीर कहाँ तें कढ़त हैं ॥२६॥

नथ

किधौं पिय नेह मनी कीरति हँसनि लेकैं,
डुले हेम डूलें भूले ध्यान समरथ के ।
किधौं मन प्रीति-मतंग गहिवे की फँदी,
जामें फँसि हूजे हाथ साथ मनमथ के ।
ऐसी भाँति देखि एरी मोहे मनमोहन जू,
कहाँ लौं बखान करौं, 'सूरति' अकथ के ।
बूझे ग्यान गथ के औ लोक लाज पथ के सु,
का के नैन धीरज निहारैं तेरी नथ के ॥३०॥

नेत्र

कमल अमृतावान भँवरादि ठाए नौं,
इनमें जो बड़ी ये बड़ाई में पगत हैं ।
कमला के कमल औ चन्द्रमा के रथ मृग,
मदन के मीन एहु चित्रनि खगत हैं ।
वनमाली जू की वनमाला के भँवर कवि,
'सूरति' निरखि जिन्हें आनँद जगत हैं ।
इन से हैं नैंन ऐसो कौन कहे बैन सुनों,
प्यारी जू के नैननि से ए कछू लगत हैं ॥३१॥

---

२६. पर=परन्तु, कहाँते=कहां से ।

३०. हूजे=हो जाइयें, का के=किसके ।

३१. ठाए नों=जब तक रुके हों । कछु=कुछ ।

अंजन

किधौं देखि दृग छवि अति ही अनूप जल,
रूप ह्वै सैंगार पर्‌यो धारा दुति सोह्यौ है।
किधों यह गरल कटाक्ष-सर लाइवे कों,
'सूरति' निकट नयननि अवरोह्यो है।
एरी व्रजरानी तेरे रस-मय भयो कान्ह,
ऐसौ कोऊ वस कहूँ सुन्यों औ न जोह्यौ है।
सब दुःख भंजन कन्हाई मन-रंजन सु,
तेरे इन अंजन निरंजन को मोह्यों है ।।३२।।

नेत्र-भाव

भूपति है प्रेम लाल डोरे हैं निसांन तेई,
चंचलता विविध तुरंग भीर भारी है।
देखिवो अनेक भाँति तेई असवार, रेख,
काजर की हाथिनि की कोर सी सवारी है।
वरुनी चंडूकनि की पाँति सी लई है पिय,
विरह मरोरिवे की अंग पैज धारी है।
'सूरति' सुकवि सेत स्याम रंग वाने वने,
प्यारी तेरे नैंननि में नीकी असवारी है ।।३३।।

वरुनी

किधौं दृग-सरवर आसपास स्यामताई,
ताहि के ए अंकुर उलहि दूने वाढ़े हैं।
किधौं प्रेम वयारी जुग ताके चहुँधा रची हैं,
नीलमनि सरनि की वाढ़ दुख डाढ़े हैं।
'सूरति' सुकवि तरुनी की वरुनी न हों हि,
मेरे मन आए यों विचार चित गाड़े हैं।
जेई जे निहारौं मन तिन के पकरिवे कों,
देखो इन नैननि हजार हाथ काढ़े हैं ।।३४।।

---

३२. सैंगार=शृंगार, लाइवे को=लगाने के लिए, जोह्यौ=देखा।
३३. वाने=वेश ('ख' प्रति में+'पागें' शब्द है, जिसका अर्थ 'पगड़ियाँ' हो सकता है)
३४. उलहि-निकलकर, वाढ़ घेरा, जेईजे-जो जो।

भृकुटी

भृकुटी निहारि को सँभारि सके धीर गहि,
किधौं कंज बैठी अलि पाँति मोहै मति है।
किधौं मीत चंद को सुन्यौ है राहु-भय, काम,
जातें दीनों धनु हिय माँझ अति रति है।
'सूरति' सुकवि हाव भाव फल बेलि किधौं,
कहाँ लों बखानों छवि कही न परति है।
सोंहनि हौं खाति एरी, जोहनि में देखी कहू,
मोहनि की रीति तेरी भौंहनि में अति है ॥३५॥

श्रवण

किधौं ए मदन राज सदन की ड्योढ़ी किधौं,
भाजन हैं पिय रस पान आछे सब तें।
किधौं चित दृग भूप रूप हैं, अनूप सुनि,
सबहि जनावैं तिन्हें रहें अगरब तें।
आली बनमाली जू की बात कहा कहौं कछु,
'सूरति' सुकवि और रीति भई तबतें।
भूले हैं गवन औ सुहात न भवन तेरे,
श्रवन की सोभा परी श्रवन में जब तें ॥३६॥

भाल

किधौं भाल भूपति को कंचन तखत अरु,
पर्‍यौ है लाल सोमा पुंज बरसत हैं।
अरुन हरित पीत स्याम सित पंच रंग,
वेदी बनी मोहनि में भाव सरसत हैं।
मानों अर्ध चंद मधि सबै ग्रह आइ बैठे,
'सूरति' सु अंग-अंग रूप दरसत है।
जैसे सब देह की अवस्था नाटिका में तैसें,
सबै गुन रूप तेरे भाल में बसत हैं ॥३७॥

---

३५. गहि=पकड़कर, माँझ में, सोंहनि=शपथें, जोहनि में=दृष्टि में, देखने में।

३६. अगरबतें=अगर्व से, गर्व त्याग कर, गवन=गमन।

३७ भाल के स्थान पर 'ख' प्रति में 'भाग' शब्द है।

अलक

मानों एक लक दुहूँ दिसि माँहि बैठ आइ,
अलिनि की पाँति गति मन कों ठगति है।
किधौं चंद डारी दोऊ ओर फाँसी गहिबे कों,
लोचन सरोजनि के दुहुँ धा अगति है।
किधौं सुधा-सर जानि आए अहि बालक ये,
'सूरति' निहारि मति सबकी पगति है।
जिनमें सकल जग सोभा आइ झलके सु,
देखि तेरी अलकें न पलकें लगति हैं ।।३८।।

केश

किधौं तन-पानिप को सोहत सिवार पुंज,
किधौं चंद पाछो आइ घेरचो तमु अरि है।
किधौं मन-पंछी गहिवें को मखतूल जाल,
मदन बनायौ फँसि जामें को निकरि है।
'सूरति' ए ऐसे, वह साँवरौ रसिक बड़ौ,
देखिबे की जक लागै धीरज न धरि है।
कारे सटकारे ए तू बार-बार छोरति है,
तेरे बार देखे कान्ह मेरे बार परि है ।।३९।।

माँग

किधौं जमुना कैं पूर बीच गंगाधारा बही,
किधौं तम चीर्‌यो रविकर आइ डारे तैं।
किधौं रसराज के सरोवर में चली बग,
छोननि की पाँति उत-इत के किनारे तैं।
'सूरति' छबीली ह्वै छलके, छबीली देखि,
और बसिकर कहा करि हौ विचारे तैं।
व्यापि जाइ बिनु आँग, वारौ आँग आँग मन,
राँग सौ ढरतु तेरी माँग के निहारे तैं ।।४०।।

---

३८. डारी=डाली, गहिबे कों=पकड़ने के लिए, दुहुँधा=दोनों ओर।
३९. पाछो=पीछे का भाग, जामें=जिसमें, जक=हट, बार देखे बाल देख कर।
४०. छोननि=शिशुओं, इत-उत=इधर-उधर के।

बेनी

त्रिभुवन पति के हरित दुख देखत ही,
सहज सुवास ऊँचे वास सोम रस है।
कोमल, सनेह सनी सुख बरसावै नित,
तीन हू बरन को प्रकट सु दरस है।
सब दिन एक सौ महातम है, 'सूरति' यों,
नागर सकल सुख-सागर परस है।
ऐरी मृग-नैंनी पिक-बैनी सुख-दैनी अति,
तेरी यह बैनी तिरबैनी तें सरस है ।।४१।।

इति श्री सूरति मिश्र विरचितं नख-सिख बरननं संपूरनं। लिखितं सीतारामेण भाद्रमासे शुक्ल पक्षे दुतिया संवत १८७५ वि० ।।श्री।।शुभम्।।

---

४१. 'ख' "प्रति में कोमल.......... नित" पंक्ति नहीं है। तें से।
बीकानेर वाली 'ख' प्रति की पुष्पिका—"इति सूरति कवि कृत नखसिख वर्णन"।

रास - लीला

रास - लीला

दोहा

ब्रजरानी ब्रजराज के, चरन-कमल सिरनाइ।
ब्रज लीला कछु कहत हैं, लखी दृगनि जेहि माइ ॥१॥

भादव सुदि छठ के दिना, संतन कुन्ड अन्हाइ।
संतन संग सब जात री, बसत करहला जाइ ॥२॥

तहाँ पाछली निसि लख्यौ, इक मंडल पर रास।
दंपति छवि संपति निरखि, को कहि सकैं विलास ॥३॥

कवित्त

लाड़ली के सीस पर चन्द्रिका विराजै अरु
लाल कै रसाल मोर मुकुट-विलासु है।

नीलपट पीत अरु भूषन जटित नग
जापैं वारि डारौं कोटि भानु को प्रकासु है।

'सूरति' सुकवि नृप भेद गान तान लेख,
बाजत मृदंग ताल धुनि कौ हुलासु है।

सुख कौ निवासु जहाँ परम सुवासु, बड़े—
भागिनि की रास ही सौं देख्यौ आजु रासु है ॥४॥

इति षष्टी विलास

---

४. यह छंद 'भक्तिविनोद' में भी संख्या १४० पर है।

प्रात होत उठि और थल, इक मंडल पर आइ ।
झूलत जुगल किसोर जू, सो छवि कही न जाइ ।।५।।
ता पाछैं मंडल सु इक, कृष्ण कुंड के पास ।
लीला रची विवाह की, आइ तहाँ सविलास ।।६।।
यह लखि कुंड अन्हाइ कैं, सातैं तिथि सुभ जानि ।
पहुँचे वरसाने सबै, सुख सरसाने आनि ।।७।।
दरसन श्री ब्रषभानु के, लहै परम अभिराम ।
श्री कीरति राजति जहाँ, सुत समेत जिहि धाम ।।८।।
तहँ ठाठी लीला लखी, रैनि पाछिली माहिं ।
गोप बंस वर्णन सुन्यौ, यह सुख कितहूँ नाहि ।।९।।
जन-पंकज ठाठी लखै, गाढ़ी प्रीति विशेषि ।
सब कै हिय वाढ़ी भगति, ठाठी ठाठिनि देखि ।।१०।।

इति सप्तमी विलास

प्रात होत उहि गाँव में, बाजे ब्रजै अनंत ।
प्रात लाड़िली को जनम, कौतिक निरखत संत ।
जहाँ-तहाँ निरतत सबै, गावत गीत रसाल ।
दधि हरदी भीजे फिरैं, तरुन वृद्ध अरु बाल ।।१२।।
मंगल श्री ब्रषभानु घर, अद्भुत निरख्यौ मित्त ।
सब कै परमानंद तहँ, 'सूरति' पढ्यो कवित ।।१३।।

कवित्त

प्रकटि कुँवरि ब्रषभानु जू के गेह तेज,
कौटि ब्रषभानु के से देखे हरसाने में ।
चौदह भवन में कवन जो न आए ब्रज,
रहे न गवन विनु जेऊ अरसाने में ।
'सूरति' मनोरथु सफल जाँचि कीने अरु,
दुरचौ वसु देती भूलि राख्यौ न रसाने में ।
सुख करसाने गौप ओप सरसाने आजु
आनँद के मेह बरसाने वरसाने में ।।१४।।

---

७. अन्हाइ=स्नान करके ।
१०. ठाठी=ठाठ (अभिनय) करने वाला ।
१२. निरतत=नृत्य करते हैं ।
१४. यह छंद 'भक्तिविनोद' में भी संख्या १३३ पर है ।

दोहा

बहुरि लाड़ली-लाल की, लीला लखी अनूप ।
मंदिर तैं बाहिर निकसि, बैठे जुगल सरूप ।।१५।।
भाँति-भाँति गुन-गान तहँ, नृत्य होत बहु भाइ ।
सम्मुख दरसन जुगल छबि, देखत मन न अघाइ ।।१६।।
भादौं सुदि तिथि अष्टमी, यह सुख लख्यो अनूप ।
तहाँ बनौ झर न्हाइ कैं, भए आनंद सरूप ।।१७।।
बहुरि तहाँ संध्या समै, भयौ दान गठ रास ।
सफल जनम कीनो सबनि, निरखत जुगल विलास ।।१८।।

(इति अष्टमी विलास)

प्रात होत नौमी तहाँ भौ बिलास गठ रास ।।
भोर कुटी ऊँचै बहुरि कियो नृत्य सविलास ।।१९।।
गह्वर वन नीचै महा, लखत तहाँ तैं लोग ।
यह सोभा लखि पाइये, जुगल कृपा के जोग ।।२०।।
तरु तैं फैंकत मोदकनि, जुगल रूप इक बार ।
परत आन जन बृंद पर, कौतुक सुखद अपार ।।२१।।
फेरि तहाँ तैं उतरि कैं, रास मंडलहि आइ ।
गह्वर वन में रास प्रभु, कियौ परम सुखदाइ ।।२२।।
फिरि वाही दिन प्रेम सनि, चले रास के हेत ।
प्रथम लख्यौ मारग विषैं, परम धाम संकेत ।।२३।।
नंद ग्राम पुनि दरसि कैं, दरसे बाबा नंद ।
श्री जसुदा, बलदेव, हरि दरसत भयो अनंद ।।२४।।
तिनके सम्मुख ह्वै तहाँ, अति आनंद लहि चित्त ।
जन्म बधाई के तहाँ, 'सूरति' पढ़ै कवित्त ।।२५।।

कवित्त

आजु ब्रजपति के वधाई मन भाई आई
रिद्धि सुखदाई सबै सुख में पगत हैं ।
जनम्यो है बालक, अखिल लोक-पालक है,
जाके भये दीननि के दारिद भगत हैं ।

'सुरति' सुदान को प्रमान हौं, बखानों कहा,
गुनी ले कैं १ले जेती संपति जगत है।
मग में जे मिलें और भूपति के धोखें तैं वे,
नंद जू के याचक पै जाचन लगत हैं ॥२६॥

ब्रज परमानंद कौं कौन परमानंद है
देखि परमानंद की परम सुहाई है।
'सूरति' सु धन देकैं धन दै लजायो, कहै—
धनि दै असीस, जेती गुनी पाँति आई है।
दीनी वृषरासि वृषरासि के उदय हित
बाढ़ी वृषरासि लोक लोकनि में गाई है।
गोकुल द्विजनि पाई, गोकुल गनै न जाई
गोकुल कहैं हो आजु गोकुल बधाई है ॥२७॥

दोहा

पढ़ि कवित्त परनाम करि, चले जावबट धाम।
तहाँ रैनि पछली लख्यौ, रास परम अभिराम ॥२८॥

कवित्त

जुगल किसोर चित चोर दूत और दोऊ
निर्तत री नट बेश छवि को प्रकासु है।
बाजत मृदंग औ अपंग मुंह चंग संग
रंग सुभ ढंग जहाँ परम विलासु है।
'सूरति' सुवानक अचानक बन्यौं है आनि
दानन के भाग देख्यौ मानक निवासु है।
पाछै रहि तिन्हैं हम लियै संग ऐहें, तुम—
जाउ बट माहीं आजु जाउबट रासु है ॥२९॥

---

२६. यह छंद भक्तिविनोद' में संख्या १३० पर है।
२७. यह छंद 'भक्तिविनोद' में संख्या १३१ पर है।
२९. निर्तत=नृत्य करते हैं।

दोहा

तहाँ सु वा बट के निकट, लख्यो प्रगट सुख-रूप
प्रात कोकिला वन लख्यौ, 'सूरति' परम अनूप ।।३०।।

इति नवमी विलाल

कवित्त

निपट सघन कुंज पुंज गुंज भौंरनि कौ
ठौर-ठौर लता झूमि रही है हुलास में ।
सेत स्याम फूल डहडहे फूले चहुँ ओर
मानों बहु नैंननि सों देखें वन पास में ।
'सूरति' सुकवि स्यामा स्याम दौऊ राजै मध्य
नृत्य-गीत-मोद होत परम विलास में ।
ऊँचे सुर गावै व्रजलाल वे रिझावैं मानौं
कोकिला ए बोलै कोकिला वन रास में ।।३१।।

दोहा

भादौं सुदि दसमी तहाँ, लखि कैं यह सुख रास ।
दुपहर लौं आए जहाँ, बाबा नन्द निवास ।।३२।।
नंद गाम परसाद लहि, आए वन संकेत ।
लिखै हिंडौरा झूलते, दोऊ सखिन समेत ।।३३।।
मान मंदिर हिं लखि लख्यौ, सज्या मंदिर चारु ।
वहुरि रास निरख्यौ तहाँ, सकल परम सुख सारु ।।३४।।
सार निरखि संकेत वट, कर प्रणाम सव लोग ।
वरसाने आए वहुरि, लहै परम सुख जोग ।।३५।।
रैनि समै अति चैन में, भयौ मान गढ़ रास ।
वहुरि तहाँ लीला भई, अद्भुत सहित विलास ।।३६।।

इति दसमी विलास

———

३२. दुपहर लौं=दुपहर तक ।

दान - लीला

दान – लीला

दोहा

प्रात साँकरी खौर पै, लीला भई अनूप ।
एक ओर ब्रज-लाड़ली, एक ओर ब्रज-भूप ।।१।।
भई दान-लीला तहां, वचन रचन बहु भाइ ।
कृपा लाड़िली-लाल की, तो सुख निरखै आइ ।।२।।

सवैया

"देहु जू दान जौ या मग जाति हौ"
"काहे कौ दान हमें न सुनावत ?"
"जानति हौ ए सखी ! तुम ही कहौ"
"लेत हैं ते नहि आपु बतावत ।"
"सूरति कौन आपु कहौ ?" "हम—
दानी सुने न ? सबैं ब्रज गावत ।"
"रीति तिहारी सुनी उलटी एजू
माँगत दान औ दानी कहावत ।।"३।।

कृष्ण-वचन

मौन ते आछे ही सों न चले हम
कौन के पास इतौ दधि पै हैं ।
"सूरति" संग सखा जितने सब
गोरस ही सों बनाइ अधै हैं ।
बात बनांइ बनाइ कहौ, हम—
हूँ बहु बातनि कौं समझै हैं ।
दान लिए बिन पै न सुनौ हम
लौटि कैं गोकुल गाम कौं जैहैं ।।४।।

---

४. आछे ही सों=अच्छी तरह, अच्छे मुहूर्त में । बनाइ=पूर्णतः । अधै हैं=संतुष्ट होंगे ।

गोपी-वचन

ए जू जाचत दान सुने द्विज हैं
तुम गोप के बेस, सबै जग गावत।
कै कोऊ दीन ही लेत, तिहारे तो–
नौ निधि नंद के गेह बतावत।
'सूरति' गोरस की कहियै कहा, दास
औ दासी गलीनि बहावत।
ऐसे कहाइ कैं माँगत हो तुम
गोकुल सो कुल काहे लजावत ॥५॥

कृष्ण-वचन

सोरठा

तुम समझी जो दान, सो न दान यह आन कछु।
कर लागत इहि थान, कर लागत इत छूटि हौ ॥६॥

गोपी-वचन

आगैं कछू दान हम सुन्यों है न कान, तुम–
जाचत सयान भरे, नेक न सकात हौ।
कोऊ सुनि ऐहै तब सब सुधि जैहै, एक–
ऊतरु न ऐहै भए ढीट बतरात हौ।
'सूरति' सुकवि हम जानि मन आनि यह
भये नये छैल यातै अति इतरात हो।
ए हो नंदलाल छाजौ अटपटी चाल कहा
देख्यो है जु माल जापै माँगत जगात हो ॥७॥

---

६. कर लागत इहि थान=इस स्थान पर कर देना पड़ता है।
७. आगें पहले। सकात=डरते। ऐहै आजाएगा। जगात=कर।

कृष्ण-वचन

जानत हौं हम जैसौ माल तुम राखति हो,
दुरी नहीं बात जग जानत बिख्यात में।
हीरनि के भंवा अरु कंचन कलस नए
विद्रुम औ केसर सुरंग सरसात में।
गज औ तुरंग संग सौंज सब दामनि की,
'सूरति' सुकवि सो प्रकट दरसात में।
कहा कहौं बात मैं लही हो बड़ी घात में सु
माल हैं जु गात में तो माँगत जगात में ॥८॥

गोपी-वचन

नए हो जगाती नैंक नए हौ न कछु तुम
बीस ह्याँ कहेंगे जौ पै एक तुम कैहौ जू।
भूलो जिन धोखें ए न अबला अबल होंहि
नेंक भौंह तानें सब सुधि भूलि जै हो जू।
'सूरति' सुकवि चतुराई की ए बानें घातें
कीजियै निसंक हम पै न कछू पैहो जू।
जान दीजै ओक, काहे टोकि-टोकि राढ़ि कीजै
रोकि राखें कहा तुम रोकड़नि लैहो जू ॥९॥

कृष्ण-वचन

लैहें वहै जु कछू जिय में तुम
मारग जो नित ही इत ऐहौ।
छूटि हौ क्यों हू दियें बिनु ना जु पै
भामिनि कोटिक बात बनै हौ।
'सूरति' और कहा कहियै इतनी
मन जानि रहें सुख पै हौ।
जो तुम या ब्रज में बसि हो रसि हौ
लसि हौ हँसि हौ अरु दै हौं ॥१०॥

---

८. दुरी=छिपी। दामनि की धन की। जु गात में=जो शरीर में।

९. ह्याँ=यहाँ पर। कै हो=कहोगे। ओक=घर। राढ़ि=झगड़ा। रोकड़नि=धन सम्पत्ति।

१०. क्यों हू=किसी भी प्रकार। रसि हौ=रस प्राप्त करोगी।

गोपी-वचन

सीख कहा इनकों लगि है ए तो
आपनी ख्वाह सदा अनुरागे।
को वसुधा जसुधा के नहीं जिनकौं
लहि भिच्छुक होत सभागे।
वस्तु पराई लगै मधुरी यह
टेव परी जु इही रस पागे।
बालक हे तब चोरी करी जब स्याने
भए तब माँगन लागे ।।११।।

दोहा

वचन रचन सुख वलित कहि, चलति भई ब्रजबाल।
नेह कलित मधु ललित वच, बोले तब नंदलाल ।।१२।।

कवित

"खरी होहु ग्वारिनि", कहा जू हम खोटी देखी
"सुनों नैंक बैंन", "सौ तो और ठाँव जाइये।"
"दीज्यै हमें दान", "सौ तो आजु न परब कछू"
"गोरस दै", "सौ रस हमारे कहाँ पाइये।"
"महीय दीजै", सौ तौ महीपति दै है कोऊ"
"दह्यौ', "जौ पै दहे हौ तौ सीरौ कछु खाइये।"
'सूरति' सुकवि ऐसें सुनि हंसि रीझे लाल
दीनी उरमाल सोभा कहाँ लगि गाइये ।।१३।।

दोहा

तब हँसि-हँसि ग्वारिनि दयौ, ग्वारनि दधि वहु भाइ।
लीला जुगल-किसोर की, कहत-सुनत सुखदाइ ।।१४।।

"इति श्री दानलीला मिश्र सुरति कृत सम्पूर्ण संवत १८३४ फागुण सुदी १३ बुधवार।"

———

११. जसुधा=यशोदा। हे=थे। स्याने=वड़े।
१२. यह छंद भक्ति विनोद में भी संख्या १५१ पर है।

रामचरित

रामचरित

चौपाई

रामचरित्र सुनो चित लाई,
भव-तारन लीला सुखदाई।
अवधपुरी जहँ परम समाजा,
राज करें श्री दशरथ राजा ।।

छंद

तिन राज कें सुत चारि प्रकटे,
परम अति अभिराम हैं।
श्री रामचंद्र से भरत लछमन,
सत्रुघन इहि नाम हैं ।।
प्रभु अवधि में सुख अवधि दीन्हीं,
बाल लीला कौ कियें।
इक समें विश्वामित्र कें गै,
जग्य-रक्षा के लिये ।।१।।

चौपाई

प्रथमहि तहाँ तारिका तारी,
मारि सुबाहु करी रखवारी।
सीय स्वयंवर की सुनि गाथा,
चले संग रिषि श्री रघुनाथा ।।

---

१. अवधि अयोध्या। अवधि=समय। गै=गये।

छंद

मग चले पग सों सिला तारी,
बहुरि मिथिला आइयौ।
जहँ जनक जू इक धनक राख्यौ,
तनक किहूं न उठाइयौ ।।
सोइ तोरि प्रभु सीता विवाही,
नृप बरात बुलाइकैं।
तहँ चारि हूँ सुत ब्याहियौ,
दशरथ नृपति सुख पाइकैं ।।२।।

चौपाई

विदा बरात भई जब चार्यौ। रिषि जू निज आश्रम पगु धारयौ।
भेंटे आइ परसु द्विजराई। क्षत्रिय रूप परम सुखदाई ।।

छंद

मिले परसुरामहि आपु तिनको सकल दोष निवारियौ।
पुनि नगर आए भै बधाए, सबनि लखि धन वारियौ।
तहँ वाम धाम चढ़ीं निहारति राम रूप मिलों सबै।
पुनि मात कौसल्या लिये सुत औरु दुलही तबै ।।३।।

चौपाई

मंगलचार विविध तहँ कीने, दान अनेक भाँति नृप दीने।
दुंदुभि बजें गुनी गन गावैं। जहँ-तहँ बंदीजन वर ध्यावैं ।।

छंद

इक समय भरत' रु सत्रुघ्न दोऊ भये विदा ननसार कौं।
श्रीराम लछमन घर रहे सुख देत नरन अपार कौं।
इक दिन वसिष्टहिं बोलि नृप जु कही सुभ दिन देखिये।
हम राज रामहिं दियौ चाहैं परम समरथ लेखिये ।।४।।

---

२. धनक-धनुष। तनक-थोड़ा भी।

३. परसु द्विजराई-परशुराम।

४. ननसार नाना का घर।

चौपाई

यह बात भरत जननी सुनि लीनी। मंदिर नृप सों विनती कीनी।
देन कह्यौवर सौ अब दीजै। रामहिं बन भरतैं नृप कीजै।।

छंद

कीजै नृपति भरथहिं सुनत यों मूरछा नृप कौं भई।
सुनि रामचंद्र चले सु वन कौं मातु पितु आज्ञा लई।
सँग सीय लछिमन चले वन, सुनि नृपति प्रान तजे तहाँ।
पुनि आइ भरत पुरी निहारो सोक मय सवरी जहाँ।।५।।

चौपाई

भरत बात सुनि वहु दुख पाए। पिंड-गति करि प्रभु सनमुख धाए।
प्रभु सुनि पितु की गति दुख कीनें। मानुष की लीला प्रति लीनें।।

छंद

लीला हियें सब विधि-करी पुनि भरत पाँइन परि रहे।
चलिये कृपा-निधि-राजु कोजे, वचन इहिविधि बहु कहे।
प्रभु कही पितु को बोल जामैं रहे सो करनी सही।
यह सुनि भरत चले प्रान तजन सु गंग तट यह मति लही।।६।।

चौपाई

गंगा जू भरतहिं समुझायो। प्रभु-लीला-कह भेद सुनायो।
तब उठि भरतपादुका लीनी। नंदीसुर अति सेवा कीनी।।

छंद

सेवा करें इत भरत उत प्रभु चित्रकूट निहारिकें।
चलि अत्रि रिषि कौं मिले अस लियौ खल विराधहिं तारिके।
सुनि रिषी अगस्तहिं मिले प्रभु जहँ तहँ सु पंचवटी बसे।
तहँ सूपनखहिं विरूप किय खरदूषनादि असुरन नसे।।७।।

---

५. पुरी अयोध्यानगर। निहारी=देखी।
६. पिंड-गति पिंड-दान, अंतिम क्रिया।
७. इत=इधर (अयोध्या में)। नसे=नष्ट किए।

चौपाई

मृग मारीचहिं इति गति दीनी। सिय-छाया रावन हरि लीनी।
सिया-विरह नरलीला कीनी। गीधहिं दरसि परम गति दीनी।।

छंद

चलि सिवरि के फल भखे अरु अनुमत मिले सिय सुधि लही।
सुग्रीव सरनागतहिं कौं दियौ राज हति बाली तहीं।
सुधि लैन पुनि अनुमत पठाए फाँदि ते लंका गए।
सीता दरस मुँदरी दई, अरु बाग सब तोरत भए।।८।।

चौपाई

अक्षहिं मारि लंक सब जारी। सिय-मति ले आए सुखकारी।
प्रभु सुनि चले कपिनि संग लीने, सागर तट डेरा चलि दीने।।

छंद

सागर मिल्यो पुनि सेतु बाँध्यौ तहँ विभीषन आइयौं।
प्रभु सरन लखि लंकेस किय पुनि लंक अंगद धाइयौ।
तिन वाद रावन सों कियौ, अरु मुकुट लै प्रभु पाँ परे।
पुनि घिरे लंका जुध भयौ बहु राकसनि के बल हरे।।९।।

चौपाई

लछमन सकति लगैं मुरछानें, अनुमत औषद लैन पठानैं।
कुंभकरन अरु इन्द्रजित मार्यौ, पुनि वह रावन दुष्ट संघार्यौ।।

छंद

रिपु मारि भार उतारि महि को,
चले सीतहि ले तहाँ।
रिपि भरद्वाजहिं लखि मिले,
पुनि आइ भरत बसे जहाँ।
पुनि अवधि आए भै बधाए,
मात मिलि सब हरषियौ।
पुनि रिषि मिले सब आनि तत्व,
विचारि करि सुख बरसियौ।।१०।।

---

८. तहीं वहीं पर। फाँदि=उलँघ करके।

९. पाँ-पैरों पर।

चौपाई

राज-तिलक प्रभुजू तहँ लीनों,
मन भायौ सब ही कहँ दीनौं।
सिव-ब्रह्मादिक प्रभु-स्तुति कीनी,
राजनीति मधुरी रस भीनी।

छंद

इक सूद्र तिहि वच दूत सुनि,
पुनि वन निवास सियहिं दियो।
इक स्वान को प्रभु न्याउ करि
लबनासुरहिं कौ वध कियौ।
पुनि अश्वमेघ सु जग्य राच्यौ
जहँ तुरंगम छाँड़ियौ।
सीता सुवन लव भए
तिनि रोकि जुद्ध सु माँड़ियौ ।।११।।

चौपाई

बालक महिपालक सब जीते,
गर्ववंत कीन्हें बल रीते।
तब प्रभु लीन्हें निज उर लाई।
आए सबनि सहित सुखदाई।

छंद

सुखदाइ आइ अनंद दीने पुत्र मित्र समाज कौं।
यों नित अजोध्या में विराजत अवतरे जन-काज कौं।
श्री राम जू के चरित इहिं विधि सेस-गंगापति रटैं।
'सूरति' सुकवि सो सुनत गावत कोटि कलि-कलमष कटैं ।।१२।

।। श्रीरामचरित सम्पूर्ण ।।

---

११. सुवन=पुत्र। मांडियौं=किया।

१२. कलि कलमष=कलियुग के पाप।

श्रीकृष्णचरित

श्रीकृष्णचरित

चौपाई

कृष्ण-चरित सदा सुखदाई, जिहि गावत सुर नर मुनि राई।
मथुरा प्रगटे पूरन कामा, श्री वसुदेव-देवकी धामा ।।

छंद

वसुदेव-देवकि कैं प्रगटि उहि रैंनि गोकुल आइयो
श्री नंद जसुदा किय बधाए परम आनन्द छाइयो।
तहँ कंस पठई पूतना. विष देन तिन सुभ गति लही।
पुनि हत्यौ सकटासुर तृषा, मुख माँहि सब दिखई मही ।।१।।

चौपाई

गर्ग जू नामकरन तहँ कीनों, पुनि माखन चोरी चित दीनों।
मृतिका भखि मुख सृष्टि दिखाई, आपुन बँधि तरु तारि कन्हाई ।।

छंव

तरु तारि बहु त्यौं महावन तें आइ वृन्दावन वसै,
तहँ दुष्ट तिरनासुर वकासुर मारि अति छवि सौं लसे।
इक सर्प-वपु मारचो अघासुर जोति आपु मिलाइयो,
अरु बाल वृत्रा कैं हरे सब रूप आपु वनाइयौ ।।२।।

---

१. मूल प्रति में 'कृष्ण-चरित्र' एवं 'मथुरा' के पूर्व 'श्री' लगा है।

२. वृत्रा=वृत्रासुर।

चौपाई

वहुरि ताल वन धेनुक मारचौ, दह तें काली नाग निकारचौ।
रैंनि अगनि तें रच्छा कीनी, मारि प्रलंब वलहि छवि दीनी।

छंद

छवि दई वलहि वहु त्यौं दवानल टारि जन-बाधा हरी।
पुनि वेनु गीत वजाइ कैं मोहीं सकल व्रज-नागरी,
पुनि चीर चोरे कदम चढ़ि परभात माँगत मन हरे।
तर जाय दरसन दै मनोरथ सबनि के पूरन करैं ॥३॥

चौपाई

वरस्यौं इन्द्र महाझर लाई, गिरि गोवर्द्धन लियो उठाई।
ग्वारनि पै निज चरित कहाए, वसन गये तहँ नंदहि लाए।

छंद

यों लाइ वहु स्यों सरद जामिनि रास-मंडल सुभ रच्यौं।
ले प्रानप्यारी संग तहँ वहु गोपिकनि प्रति रंग मच्यौ।
धुनि सुनत मुरली थके रवि-ससि थके देव विमान में।
व्रज भयो परमानन्द सो कहि सकैं कौन वखान में ॥४॥

चौपाई

संखचूड़ वृषमासुर मार्यो, कैसी अरु व्योमासुर तार्यौ।
न्हात अक्रूरहिं दरसन दीनों, सो प्रभु मथुरा आवन कीनौ।

छंद

पुनि आइ मथुरा रजक दुष्टहिं मारि वसन तहाँ लए,
प्रभु आपु, अरु वलदेव पहिरे वाँटि अरु ग्वारनि दए।
कुवजहिं सु मिलि धनु तोरि पुनि गज मारि दंत उखारियौ,
दोउ वीर काँधे धरि चले लखि प्रान पुरजन वारियौ ॥५॥

चौपाई

रंगभूमि आपुन प्रभु आए, सव हों सन विधि दरसन पाए।
मुष्टिक अरु चारणूर पछार्यौ, कंस नृसंस मारि महि डार्यौ।

छंद

ज्यों दुष्ट मार्यौ पुहप वरषे सव हिं विधि प्रभु सुख भये,
पुत्यानि आपु पढ़े जहाँ गुर पुत्र आनि सबैं दए।
संदेश दै ऊधव पठाए ब्रज भँवर गाथा भई,
अक्रूर हस्तिनपुर पठाए पाँडवनि की सुधि लई ॥६॥

चौपाई

जरासंध कौ [illegible] दल [illegible]यो, जवनि मारि मुचकुन्दहि तार्यौ।
पुरी द्वारिका सुवस वसाई, तहँ विवाह कीने जदुराई।

छंद

तहँ प्रथम श्री रुकिमिन विवाहौं सकल खल मद झारि कैं,
तिनकें भए प्रदुम्न सुत रति लई सेवर मारि कैं।
पुनि सत्यभामा जाँबुवन्ति व्याही सु मुनि परसंगत तैं।
— — — — ॥७॥

चौपाई

वहुरि देवि कालिंदि विवाहीं, सत्या पुनि व्याहीं विधि माहीं।
भद्रा और लछमना रानी, आठौं पटरानी मनमानी।

छंद

पुनि मारि नरकासुरहिं लाए राजकन्या ही सबै।
ब्याहीं मुहूरत एकहीं सोरह सहस दुलही तवै।
वहु पुत्र प्रकटे वहुरि श्री वलदेव रुकमी मारियौ।
पुनि बानासुर की भुजा काटी कूप तैं नृप तारियौ ॥८॥

चौपाई

श्री वलदेव ब्रजहि पगु धार्यौ, हरि जू पुनि पौंडिक नृप मार्यौ।
वानर द्विविध तारि सुख वरसे, नारद कौं मंदिर प्रति दरसे।

छंद

यों दरसि पांडव जग्य साध्यौ जरासंध हि मारिकैं,
राजा छुड़ाए बंदि तें प्रभु विरदु निज उर धारिकैं।
सिसुपाल साल्वरुध सोभ हति पुनि दंतवज्रहिं मारियौ,
संपति सुदामा कौं दई मुख पै न तनक उचारियौ ॥९॥

चौपाई

सुर्ज-ग्रहन कुरुक्षेत्रहिं आये, ब्रज-जन मिले परम सुख पाये,
आइ मिलीं सबही पटरानी, अब अपनी जहँ कथा बखानी ।

छंद

यों कथा देवकि के प्रथम सुत दिये हैं प्रभु आनिकें,
ब्याही सुभद्रा अर्जुनें बल सौं विनय अति ठानिकें ।
दिय दरस द्विज श्रुति देव नृप पुनि सुनी वेद स्तुति करी,
बृक मारि द्विज को पुत्र दिय यौं द्वारिका राजत हरी ।।१०।।

चौपाई

ऐसें नित लीला श्रुति गावें, अरु ब्रह्मादिक पार न पावें ।
सदा सनातन रूप विराजें, लीला करत भक्त हित काजें ।

छंद

लीला करत नित भक्त काजें परम अद्‌भुत साज सों,
प्रभु नित्य वृन्दावन विराजें जुगल रूप समाज सौं ।
ए चरित सेस दिनेस श्री गंगेस हिय अभिराम हैं,
'सूरति' सुकवि श्री भागवत को ध्यान यह सुखधाम हैं ।।११।।

श्रीकृष्णाय नमः । इति श्री भक्ति विनोद राम-कृष्ण-चरित सूरति कवि कृतं संपूर्ण ।।शुभमतु ।। श्री ।।

फुटकर छंद

फुटकर छंद

अ—रस-सरस से संकलित

नव-रस

सो रस नव सिंगार पुनि,
हास रु अद्भुत बीर।
रुद्र, भयहि बीभत्स अरु,
करुना शान्त सुधीर ॥१॥

शृंगार रस

बुधि विलास जुत जहँ रहैं,
रति कों पूरन अंग।
ताहि कहत शृंगार रस,
केवल मदन प्रसंग ॥२॥

धर्मानुकूल नायक

धरम करम काज कामिनी कुलीन करै,
'सूरति' संजोग जोग सुरति सुरति माँहि।
नित प्रति चार औ अचार कों विचार जिहि,
भावैं सुर ईस सेवा, विषै सुख रुचै नाहिं।
वचन जौ बोलै ताकों त्योंही प्रतिपाल करै,
कबहुँ न छाँड़े नेंक काहू की जु गहै बाँहिं।
ऐसी अनुकूलताई कौनें बनि आई भाई,
मानै अघ होय परतीयहु की छुवै छाँहि ॥३॥

---

१. रस-सरस, छन्द ६, पत्र ३८—२
२. रस-सरस, छन्द ३३, पत्र ३६—२
३. रस-सरस, छन्द ६३, पत्र ४१—१

भयानुकूल नायक का उदाहरण

रोचि में रजनिपति, गुन माँहि गनपति,
धन माँहि धनपति, तेज सरसायौ है।
'सूरति' सुजानताई कहाँ लों बखानों सब,
नाइक में लाइक सो ठाठ बनि आयो है।
और सुनि आली मेरे भाग की बड़ाई जातें,
जिय में रहत नित आनँद ही छायौ है।
पिय के हियै में लोक भय आनि बस्यौ उन,
मेरे हिय मैं तें सौति भय सौ भगायौ है ।।४।।

चातुर्य प्रिय दक्षिण नायक

रूप अभिनेंन जुत दृगनि लुभायें लेत,
चित्र सुकुमार वार सुख को न सार है।
नूतन सुवैस कैसें करै समताई गुन,
घटै नित बढ़ै यह कोविद विचार है।
'सूरति' सुरति विनु देत न सरस रस,
कबहुँ इकन्त ऐसें वचन उचार है।
देखौ गुनताई सुखदाई मनभाई कहा,
जेती चतुराई जामें तेतोइ पियार है ।।५।।

मुग्धा सुरताख्यात नायिका

कहा भयौ नेंक तन जोवन दिखाई दई,
लाज की झलक सी पलक दृगहू गहैं।
तऊँ दिनराति लरकाई की सुहाई रीति,
छूत न क्योंहू रिस फूसौ हम जो चहै।
तासों तुम चाहत अनंग को प्रसंग संग,
पै ये ढंग रावरें अनौखे चित्त कौं दहैं।
भूषन बनाइवे की जाहि न सुरति वह,
जानत सुरति औ 'सुरति' कौन सौं कहैं ।।६।।

---

४. रस-सरस, छन्द ६६ पत्र ४१–२
५. रस-सरस, छन्द-संख्या ८२, पत्र ४२–२
६. रस-सरस, छन्द-संख्या २४, पत्र ४६–२

भय विशेषा मुग्धा वर्णन

सेत जरतारी सारी सजि पी नवल नारी,
बैठे मिलि सेज मध्य जोन्ह जिमि क्षीर में।
कै कै समाधान चह्यौ सुरति सुजाँन जब
भजी भय मानि रही नैंसि कन धीर में।
गह्यौ पिय वास कह्यौ एतौ विसवास काहे
बोलें तुम ब— जानो लोभो पर पीर में।
सीस तें उतारि पट पाछे यौं फरहरात
झिलिमिलि चंद सुप-कंद मनौं नीर में ।।७।।

सुरति लज्जा मध्या

'सूरति' सुरति करि सुखद निसि, चख ऊँचै न उचाइ।
हा-हा कहि-कहि चिवुक गहि, सुख लहि पिय मुसकाइ ।।८।।

संकेतावरोध अनुशयाना नायिका

भौर ही तैं आनँद करोर विधि वाढ़े सुनि
नंद के किसोर मति मिलन विचारी है।
'सूरति' सु देखौ अब रवि हू छिपन आयौ
मेह दवि आयौ सब समैं सुखकारी है।
ऐसे नीके बानक में आनक में भई औरै,
दयौ है अचानकहिं दई दुख भारी है।
ऐरी उहि वाग वड़े भाग सों संकेत हुतौ
आज उहाँ वासिकैं वटोही वाट पारी है ।।९।।

---

७. रस-सरस,-छंद-संख्या २५, पत्र ४६-२ वास=वस्त्र। विसवास= विश्वास।

८. रस-सरस-छंद-संख्या, ३७, पत्र ४७-२

९. रस-सरस-छंद-संख्या, ८२, पत्र ५४-२

चरित-कोविदा नायिका

नवल किसोर लाल गेरु में बुलाए बाल,
अति ह्वै खुसाल रस केलि सरसाई है।
तिहिं छिन सास घर-घाली कहुँ आइ गई,
बोलो पिय जाओ दूती संग लपटाई है।
कौतिक निहारि गुरु-नारि कह्यौ कहा है भयौ
यह निरदई सुन त्रास काज आई है।
नीठि कै छुटायौ तेरौ जस उपजाये बलि,
सुरति सु वारी कहा सूरति दुराई है ।।१०।।

भाग्य-प्रशंसीनी स्वाधीनपतिका

परम सुजान गुनवान कुलवान सब,
त्रिद्या सुनिधान जस ऐसे हित धारी के।
जिनकी रसाल छवि देखै बहु बाल मोहिं
होत है विहाल यों बखान बनवारी के।
'सूरति' सु जाकी सम है न मैन मूरति हू
कहा लौं बखानों गुन ऐरी सुखकारी के।
ऐसो पिय मोसों अनुराग-वस जानति हौं,
मेरे से न भाग औ न भाग काहू नारी के ।।११।।

निद्रा संचारी का उदाहरण

सुन्दर सु बार सग सोहें स्याम सुकुमार
सुमन सुधारि सेज बैठे चित चाइ कैं।
सेत ही सु बागै सब बन्यौ हैं सुबास बास,
रति सौं सँवारि दुहू पहरयौ बनाइ कैं।
सुमन के चौसर सजीले कहा लागत हैं,
तैसो ससि जौन्ह सोभा देत सरसाइ कैं।
'सूरति' सकल रस कीनैं सुख सौं सरस,
रसमसे सैन बस सोए लपटाइ कैं ।।१२।।

---

१० रस-सरस, छंद-संख्या १०५, पत्र ५६-२
११. रस-सरम, छंद-संख्या ६, पत्र ६०-१
१२. रस-सरस, छद-संख्या ६७, पत्र ८३-१
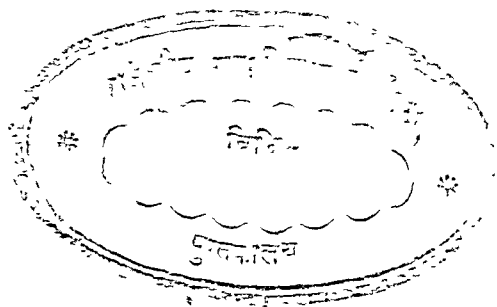
ब—रसगाहकचन्द्रिका से संकलित छन्द

मंगलाचरण

रसिक सिरोमनि रसिक प्रिन, रस-लीला चित चोर।
रसा रास रस मय करी, जय जय जुगलकिसोर ॥१॥

रूप-मान

काहे कौं जू मुरि बैठतीं हों रूठि-रूठि,
काहे करतीं हौ भटू भौंहनि तनाइबौ।
काहे चित्त चाहतीं हौ मनुहारि प्रीतम की,
छाँडि देहु आपनी ये चातुरी बनाइबौ।
रूप गरबीलौ सु छबीलौ इत आइ है जौ,
भूलि जैहो तबै मान-साज कौ बनाइबौ।
मुहमदसाहि जू की रीति नहिं सुनी आली,
छबि कौ दिखाइबौ सो यही है मनाइबौ ॥२॥

वसंत

हीरा लाल पन्ननि के गहने जु पहनें ए,
तेई फुलवारी मानों फूली है उछाह की।
कहूँ कहूँ नीलम तें भौंरनि की पाँति भली,
अरगजा पौंन तें सुगन्ध पौंन चाह की।

टिप्पणि:—इस पुस्तक में "रसिकप्रिया" की टीका कुछ प्रश्नों का उत्तर देने के लिये पद्य में प्रस्तुत की गई है। प्रसंगवश इसमें ५ ऐसे मौलिक छंद दिये गये हैं, जो शुद्ध काव्य की सीमा में आते हैं। अतः उन छंदों को यहाँ संकलित किया जा रहा है।

२. मुरि=मुड़कर। देहु—'क' प्रति में नहीं है।

भूमि में जु फूल फूले केतौ रितु मैन मानों,
ताकी एक बात मैं विचारी यौं उनाह की।
और सब कोऊ सोभा देखत बसंत की सो,
देखत बसंत सोभा मुहमदसाह की ॥३॥

होली

लावति अबीर मेरी वीर दौरि दौरि औ,
गुलालनि के थाल भरि लै लै निबहति है।
न्यारी पिचकारी सुखकारी भरि राखी पुनि
चोवा अरु चंदन कौ छारिबो चहति है।
तूँ तौ कहै पिय संग होरी जाइ खेली परि,
एक बात कौं तूँ कछू भेद न लहति है।
मुहमदसाह जब ताकत हैं इतै तब,
होरी खेलिबे की कौंनें ताकति रहति है ॥४॥

अनुराग

डोलैं बावरी-सी बोलैं विचल-से बैंन चैंन,
दिन हूँ न रैंन याहि भई बिथा भारी है।
तापै तुम चन्दन गुलाब छिरकति भटु,
नाहक कपूर दै दै चूर करि डारी है।
जानति न पीर वेही काज ऐइ लाज करौं,
मैं तौ जिय आपने में बात यों बिचारी है।
याकी यह 'सूरति' भई है तातें जानी कहूँ,
मुहनदसाह जू की 'सूरति' निहारी है ॥५॥

---

३. उछाह=उत्साह। ताकी=उसकी। पाँति—'क' में "नाँति" पाठ है।
४. वीर=सखी। परि=पर। कौनें—किसको।
५. विचल-से=अस्त-व्यस्त उल्टे-सीधे। याहि=इसको। तापै=उस पर। तातैं=इसलिए।

प्रबोधचन्द्रोदय भाषा

ककुभा छंद

तहाँ एक दिन अति प्रसन्न ह्वै, कीर्त्तिबर्म वह राजा।
बैठो हुतौ सभा सुखदाई, साजैं सकल समाजा ।।
सूत्रधार इक नारि लिये संग आइ दंडवत कीनी।
ताकौं भूप निहारि गुनी अति, आज्ञा तिह इक दीनी ।।१०।।

नृप विवेक अरु महामोह कौ, स्वाँग आनु इहि वारी।
तय उनतैं परदा इक रचि कैं, राखि ताहि मधि नारी ।।
कह्यौ बोलि तिहि स्वाँग सुकीजै, नृप बिवेक ज्यों जीतै।
महा मोह हारै तासौं अरु, सबै दिखावौ रीतै ।।११।।

इती कहत हो 'त्यौं' परदा बिच, कामदेव तहाँ आयौ।
महा मोह की हार बात सुनि, महा हिये दुख पायौ ।।
तुरतैं तेग पकरि कर सों तब, काम वचन कहि ऐसैं।
रे गँवार सठ सूत्रधार तूँ, वृथा बकतु है कैसैं ।।१२।।

हम से जाके जोधा जग जिहिं, तीन लोक बसि आनैं।
ता नृप महा मोह पै मूरख, जीत बिबेक बखानैं ।।
इह सुनि सूत्रधार निज तिय सों, हरयै बचन सुनायौ।
महा मोह कौ महाबली यह, मन्मथ जोधा आयौ ।।१३।।

सुनि कैं बात कोप इन कीनों, ह्यॉं अब रहिबो नाहीं।
यह कहि सूत्रधार लै नारी, जात भयौ छिन माहीं ।।
कामदेव परदा तें बाहर, सभा बीच पुनि आयौ।
सुंदरता ताकी को बरनै, जैसें ग्रंथनि गायौ ।।१४।।

संग लिये रति नाम वाम, अभिराम रूप कौं धारैं।
मद घूमत नैंना रतनारे, प्रिया-कंठ भुज डारैं ।।
फूलन के गहने फूलन के, धनुष बान कर सोहैं।
सुंदर स्याम सलौनी मूरति, जाहि देखि सब मोहैं ।।१५।।

---

१०. छंदशास्त्र के अनुसार यह 'सार' छंद है।
११. ताहि='ख' प्रति में 'ता'।

आइ सभा मैं काम वाम सौं, ऐसैं वचन सुनायौ।
देखि तीय कहि गयौ वृथा वकि, सूत्रधार जो आयौ॥
भूप हमारौ महामोह है, ताकी हार बतावै।
जीत विवेक बखानैं मिथ्या, कहत लाज नहिं आवै॥१६॥

तव पति सौं बोली रति सुनियत, बली विवेक महाई।
वड़े-वड़े जोधा संग जाके, निसि दिन रहत सहाई॥
प्रथम सील संतोष दूसरौ, अर सतसंग वषानौं।
छमा दया अरु दान सत्य, वैराग्य वली वहु मानौं॥१७॥

यह सुनि काम वाम सौं बोलौ, तिय अति डरत महाई।
हमरे महा मोह के जोधा, सुनि सुंदरि सुखदाई॥
इक तौ मैं अरु क्रोध लोभ हैं, गर्भ विरोध सुजानौं।
मिथ्या अरु पाषंड महाबल, हिंसा त्रिष्ना मानौं॥१८॥

तिन मैं इक मेरी सुनि मैं सव, किये सवल बल हीने।
त्रिय कटाक्ष हथियारहि सौं मैं, तीन लोक वस कीने॥
इंद्र कियौ वस गौतम ऋषि की, त्रिय जु देखि ललचानौं।
गुरु पत्नी कूँ देखि चंद्रमा, महा दोष लिपटानौं॥१९॥

विधि हू अविधि करी सो, मेरे वाननि की अधिकाई।
ऐसे हूँ जो जीव बसत जहँ, मेरे दास सदाई॥
जहाँ वाग अरु राग तड़ाग, सुगंध सेज त्रिय होई।
ऐसी फौज हमारी जहाँ-तहाँ, रहै विवेक न कोई॥२०॥

तव तिय कही सही पिय यौ है, शत्रु न छोटो गिनिये।
और वात कछु पूछत प्रीतम, वहू भेद कछु भनिये॥
महा मोह जु विवेक भ्रात हैं, सुनो वैसा भयौ कैसें।
कहौ वात मोसों यह प्रीतम, समझि परै सब जैसें॥२१॥

---

१७. रहत—'ख' प्रति में नहीं है।

१८. नारी='ख' प्रति में नारीय।

२०. वाननि–'ख' में "वानन की"। इस क्रम-संख्या का छंद 'क' में नहीं है।

२१. वहू=वह भी। भनिये=कहिये। नै=वह। मो सों=मुझसे।

तब रति-पति बोलौ, सुनि उतपति इनकी सबै बताऊँ।
याकैं कुल विरोध कौ कारन, सों तिय तोहि सुनाऊँ ।।
आदि पुरुष माया जाया तिहि, लखि मन सुत उपजायौ ।
प्रवृति निवृति मन की द्वै तरुनी तिन संतान बढ़ायौ ।।२२।।

महा मोह दै आदि सबैं हम प्रवृति नाम तिहि जाये ।
विवेक आदि सब भये निवृत्ति के, भ्रात त्रिमात कहाये ।।
तहाँ मोह मन की आज्ञा मैं, हम सब पितु कों भावैं ।
विवेक आदि मन तात वात तजि, औरें रीति चलावैं ।।२३।।

महा मोह कौं राज दियो मन, पिता भूमि बहु दीनी ।
कहुँ कहुँ भूमि दई बिबेक ही, भोग-जोग कर हीनी ।।
तातें वे सब तात मात मम, वंश हन्यौई चाहैं।
एक बात सुनिवे मैं आई, जातैं चित अति दाहैं ।।२४।।

तव रति कही कहौ पति हम सों, कारन कौन न कहिये ।
प्यारी जो मानत हौ तौ पिय, सबै कह्योई चहिये ।।
मदन कही त्रिय कहनावत इक, सुनी झूठ पैं ह्वै है।
हमरे कुल मैं एक राकसी, प्रगट होइ दुख दै है ।।२५।।

मोह दिक सब वंस नासि है, वृथावाद कछु ऐसें ।
वैरी बैरु झूठ वाधत हैं, साँच होइ तौ कैसें ।।

रति-उवाच

कहिये पिय किहि नाम वाम वह कहाँ प्रगट सो ह्वै है।
जैसी सुनी कहो प्रिय तैसी, कैसे बंस नसै है ।।२६।।

---

२२. याकैं—'क' में ये कैं ।
२२. पुत्रउजायौ—'क' में पुत्र उपजायो ।
२५. राकसी=राक्षसी ।

मन्मथ उवाच

सुनि तिय विद्या नाम सु ह्वै है, वेद-सिद्धि तिहि जनि है।
कहैं विवेक पिता ताको वह सकल वंश कौ हनि है।।
यह सुनि रति अति मूर्च्छित ह्वै कैं परी धरनि के माँही।
कामदेव तन धीरज दे कैं लई उठाइ गहि बाँहीं।।२७।।

बोलौ झूठ कि साँच ताहि सुनि भलौ कियो भय चित कौ।
जब लग महामोह अरु हम हैं, चितै सकै को इत कौ।।
इतनी बात होत हा ज्यौं 'ही' नृप विवेक तहाँ आये।
संग तीय मति पट-अंतर तें रति पति वचन सुनाये।।२८।।

अरे कुकर्मी नीच कर्मरत, वृथा वाद क्यों बोलै।
बड़े बड़िन की निंदा करि गुन झूठ आपनो खोलै।।
यह सुनि काम वाम सैं बोलौ, हरैं वचन तिहि ठाहीं।
यह तौ बोल बिबेकहि कौ सौ, सुनियत है पट माँही।।२९।।

सुनि सो बात रिसातहि आयौ, अब ह्याँ रह्यौ न चहियै।
यह कहि काम गयौ तिय संग लै, महा मोह जहाँ कहियै।।
नृप विवेक पट बाहिर आये, बोले धीरजता सौं।
देख्यौ त्रिय कहि गयौ वृथा बकि काम गरब की बातैं।।३०।।

झूठौ जग तामैं जग के सुख, झूठौ निपट महाई।।
नरक धाम जो वाम कार, सठ ताकी करै बाड़ाई।।
रोग वियोग सोग अरु चिंता, मरन अंत जिहि माहीं।
ता जग कौं सुख मान रह्यौ है, इहै भूलि यह ठाहीं।।३१।।

सुख रूपी चेतन निज तन मैं, ताकी सुरत विसारी।
इन्द्रीगण जे जड़ हैं तिन मैं, मानत सुक्ख अनाड़ी।।
जो सुख इन्द्रिनि तें है तो तौ प्राण गये वे हैं ही।
क्यौं न लहै सुख यातें जानौ उहि प्रसंग सुख लैं ही।।३२।।

---

२७. बाँही = भुजा
२८. इतकौं=इधर की ओर।
२८. तीय मति='ख' में तोय मति।
२९. हरैं=धीरे, मंद=ध्वनि में।
३२. है तो तौ='ख' में "है तौ"।

तातैं चहियै उह सुख रूपी, चेतन सौं मन लावैं।
जगत असार जान जानि कैं छांड़ै, तौ परमानँद पावै ।।
अरु मुनि मदन कहि गयौ हम सौं पितु आज्ञा मैं नाहीं।
मो मन तात वात सुनिये वह सदा कुमारग माँहीं ।।३३।।

हरि सौं विमुख करै जु पिता गुरु मात भ्रात ते तजिये।
वेद वचनइ पिता तैं दोख न भले करम ते सजिये ।।
पिता तज्यो प्रह्लाद, शुक्र गुरु तज्यौ, न वलिनैं मानौ।
माता भरत तजी भ्राता तजि दियो विभीषन जानौ ।।३४।।

जो कुमार्गी होय सु तजियै अरु सुनि मन अघ वोयौ।
निज पितु जीव वन्ध में करि कैं, भूलि नींद अप सोयौ ।।
जव मति पूछी सुद्ध जीव तुम आतम रूप बखानौं।
क्यौं यह दीन भयौ सो लखिये सुख दुख मैं लिपटानौं ।।३५।।

कही विवेक सुनौ तिय चेतन सुद्ध फटिक ज्यौं सोहै।
जो रँग निकट धरौ सो भासै, त्यौं माया संग सो है ।।
मन के संग ढंग सव विगरे जगत जाल में आयौ।
कौन कौंन इह जोनि जोनि में मन नें नहिं भरमायो ।।३६।।

तव मति कही सुनौ पति कवहूँ मन निरमल गति ह्वै है।
जा करि जीव अविद्या छुटि है, सुद्ध रुप ह्वै जैं है ।।
कही विवेक येक तिय वात सु मो पै कही न जाई।
तिय कौं और तिया की वातैं कवहू नाहिं सुनाई ।।३७।

मति वोली कहिये पिय मोसों तुम्हरे सुख दुख माँहीं।
पतिवरता को इही धरम है, पिय हित धरै सदा हीं ।।
सुनि तिय हमरै और तिया इक नाम वेद-सिधि जाकौ।
वहुत दिनन तें मान करि रही, आवन वनौ न ताकौ ।।३८।।

---

३४. तुलसीदास के एक पद के भाव पर आधारित

३७. 'ख' अविद्या ते छुटि।

सांति दूतिका जो उहि लावै तौ वह मो पैं आवै।
तासें सुत प्रबोध उपजै तब, सो वह मनहि ज·ावै ।।
विद्या नाम होइ इक पुत्री, ये दोऊ जब ह्वै हैं।
तब मन लीन होइ चेतन में सकल काज बनि जैहैं ।।३९।।

सुनिये नाथ बात ऐसी जौ तौ उहि वेग बुलै हों।
मिटि है सकल कलेस और मैं सान्ति अपरमित पैहों ।।
हौ प्रसन्न बोले विवेक यों, बात सुनौ इक रानी।
सुनियत ऐसैं महामोह बहु देश लेन मन ठानी ।।४०।।

अपने सुभट जहाँ तहँ पठाय संक न मन में लावै।
उद्यम वेग कीजिये तिहि ज्यौं बैरी बढ़न न पावै ।।
इतनी कहि विवेकी ह नें सम दम सेवक भारे।
तिनि कौं पठवन काज तीरथनि सुंदर सहित सिधारे ।।४१।।

महा मोह इह सुनी आपने लोक बिवेक पठाये।
ठौर ठौर तव इन हूँ सुनि बहु अपने सुभट बुलाये ।।
तिन मैं दंभहि आज्ञा दीन्ही तो सौ बली न कोई।
करौ आपनो अमल तीर्थनि मैं ज्यौं रिपु काज न होई ।।४२।।

इतनी कहत महा तीरथ तहँ रूप दंभ कौ आयौ।
दंभी तहाँ अनेक साथ हैं देख जगत भरमायौ ।।
भीतर और बहिर में औरैं, लोगन दंभ दिखावै।
अपने जे सेवक ते निज हैं, तिन यह सीख सिखावै ।।४३।।

सन्यासी दंभ उवाच

सुनहु सकल नख जटा वढ़ावौ, अंग विभूति चढ़ावौ।
वस्त्र भगोहें धरौ जु तन मैं, मौंनी ह्वै ध्यान लगावौ।
भेंट चढावैं नर अरु नारी नैंनन सौं नहिं लखियै।
निसि निसंक पाए हरता नहिं मरौ सब कुछ भखियै ।।४४।।

---

४२. "इतनी कहि·······भारे"—'ख' में "इतनी नृप विवेकीह सम अरु दमश्रै सेवक भारे।"

४३. अमल = आज्ञा प्रभाव।

४४. सुनहु सकल = 'ख' में खोवू।

ढोंगी धर्म उवाच

रे चेलौ मुख मूदें बोलो, चिंटी झारि पग धारौ।
हिंसा होइ न काहु जीव की, यहै धरम कौ सारौ।।
सेवक लखै उपास पास के दिन में यहि विधि रहियै।
मंत्र यंत्र निहसंक करौ निशि अंक नवल तिय गहियै।।४५।।

वैरागी दंभी उवाच

हम वैरागी सर्बस त्यागी ये तौ बातैं कहिये।
बसन बास भूषन बहु भोजन प्रभु सेवा हित चहिये।।
छापा तिलक देहु नर नारी जातें सब दुख जाहीं।
तन मन धन अरपन करि दीजै इहै मुक्ति जग माहीं।।४६।।

ऐसें दंभ सबै दंभनि सँग बैंठ्यौ जहाँ तहाँ ही।
अहंकार आयौ द्विज अपनौ रूप धरैं तिहि ठाँही।।
नाक सिकोड़ैं तिरछी चितवन तपी व्रती तिहि देखैं।
तिनकूँ लखि बोलौ कष्टनि सो कहा इनन सुख लेखैं।।४७।।

बड़े मूढ़ होते सुख छाँड़े झूठे सुख की आसा।
देखौ किन परलोक वृथा ये त्यागे जगत विलासा।।
पुनि वे लखि अपने मारग के अहंकार तहाँ आयौ।
दंभ सिष्य बोलौ द्विज दूरहिं बैठौ दरसन पायौ।।४८।।

अहंकार कहि मैं अपने कुल सूरज प्रगट्यौ जानौं।
मो समान काहू गुन मैं कोउ नहीं बात यह मानौं।।

दंभी उवाच

दंभी कही हम ब्रह्म लोक इक समैं गये रे भाई।
मो लायक थल देख्यौ नहिं तव ब्रह्मा बुद्धि उपाई।।४९।।
अपनी जंघ धोइ कैं मोकौ ता ऊपर बैठायौ।
यातैं हो परसतु किहुँ नाहीं सब जग अशुचि निहार्‍यौ।।

---

४५. 'ख' में तृतीय और चतुर्थ चरण नहीं है।
४८. होते सुख=उपलब्ध-सुख

अहंकारोवाच

अहंकार बोल्यौ तैं अपनी इतनी बात बताई।
कोटि-कोटि ब्रह्मा मेरे पग परे जु रहत सदाई ॥५०॥

यह सुनि दंभ लखी जिय मैं यह अहंकार मत होई।
वृद्ध पिता हमरो तब कहियै मिलै मान हित सोई ॥
अहंकार पूछी दंभ हि तव पिता लोभ हैं आछें।
तृष्ना मात झूठ सुत नीकैं रहे कुशल सों पाछें ॥५१॥

दंभ कही तुम्हारी किरपा तैं नीके सब संग मेरे।
इहाँ विद्यमानहि हैं सब रे सुख भयो तुम्हारे हेरे ॥
भली भई आये तुम हूँ ह्याँ महा मोह नृप ऐहै।
बहुत विरोध बढ्यौ विवेक सौं युद्ध क्रुध ह्वै कैं हैं ॥५२॥

अहंकार पुनि कही दंभ सौं नहीं कुसल कछु यामैं।
इतनी कहत हुते त्यों आगम नृप को सुनौं सभा मैं ॥
पहिले छरीदार आये पुनि बहु सिंहासन आयौ।
महामोह आये आपन पुनि सबहिन सीस नवायौ ॥५३॥

बैठि सभा मैं महामोह तब अपनौं दल सु निहारौ।
रानी मिथ्या दृष्टि हिं सो तब ऐसें बचन उचारौ ॥
सुनौ सुन्दरी सब तीर्थन मैं मेरे लोग विराजैं।
काशीपुरी बची सो लहौ जहाँ विवेक दल साजै ॥५४॥

जो विवेक कै सुत प्रबोध अरु पुत्री विद्या होई।
तौ वह शत्रु सबल ह्वै जैहै अबहिं जीतिये सोई ॥
रानी कही सुनौ हो राजा काशी हाथ न ऐहै।
इक तौ पुरी बड़ी अरु गंगा सकुल विवेक बसै है ॥५५॥

---

५३. हुते=थे। सिंहासन='ख' में 'सिहान'।

५५, हाथ न='ख' में 'हाथनि'

एक रटैं हरि एक रटैं हर एक तपीव्रत धारै।
एक वेद धुनि करै एक तहाँ कथा पुरान उचारै।।
सल दम नियम जोग कौं साधै एक समाधि लगावै।
ता पुर मैं तुमरे जन एक न पिय प्रवेशहू पावै।।५६।।

राजा वही कहाँ तैं उनके बल की बात बखानैं।
मेरे जो जोधा तिन बल की गति तिय तू नहिं जानैं।।
बंधु विरोध बड़ौ मम मंत्री झूठ प्रधान हमारौ।
कलिपुग हैं हारोल सेन मैं दलपति क्रोध निहारौ।।५७।।

सोदर मेरौ कामबली विभिचार पुत्र है ताकौ।
पुनि ताकैं कलंक सुनि उपज्यौ चंद सु आसव जाकौ।।
पुरोहित है पाखंड हमारौ लौभ बड़ौ भंडारी।
भ्रम अरु भेद बसीठ बड़ो अपमान सस्त्र सब धारी।।५८।।

तेरौ पिता कृतघ्न कामिनी नहिं कोऊ समता कौं।
स्वामि घात विश्वास घात अरु मित्र दोष सुत जाकैं।।
ब्रह्म दोष तिय तेरौ सुत है, एक बली भुवि माहीं।
जहाँ होई यह तहाँ धरम के पुंज संबै नसि जाहीं।।५९।।

तृष्ना और दुरासा सुंदरि, सदा सखी हैं तेरी।
इन सौं कोउ न छूट्यौ जग मैं, बुद्धि संबंन की घेरी।।
राग द्वेष आलस दरिद्र दुःख, रोग शोक भट मेरे।
को विवेक दीनन कौ संगी, आवै मो दल नेरे।।६०।।

इक इक नें जीत्यौ जग सो तौ इह इकठे हैं सब ही।
शत्रु सकल दिशि दिशि भजि जैहैं, लखि हैं मो दल जबही।।
ऐसे रानी मिथ्या दृष्टि हि, जब यो बचन सुनाये।
महामोह राजा कैं आगें, तव सव मंत्री आये।।६१।।

बोले श्रद्धा नृप विनेक कूं जौ वह कहुँ तजि जाई।
— — — — — ।।
तब राजा विवेक पै भ्रम अरु भेद वसीठ पठाये।
श्रद्धा तजि कशीपुरि छाँड़ी आई सुवचन सुनाये।।६२।।

---

५६. "एक न पिय = 'ख' एक न पिय"
६२. वह कहुँ—'ख' में वह तिन्है। दोनों प्रतियों में तृतीय व चतुर्थ चरण नहीं है।

राजा नैंक निहारे उन त्यौं जरन लगे जब भाजे।
आइ कही सब महामोह सों तबैं बुद्धि दल साजे॥
नृपति बिबेक सुनी रिपु आयौ, तब निज सुभट बुलाये।
चले सकल दल साजि राज तब, देवालय मैं आये॥६३॥

करि परनाम बिंदु माधौ कौं विश्वेश्वर वर लीनौ।
आइ दुवो दल भये इकट्ठे युद्धारंभ सु कीनौं॥
महामोह नें तहाँ प्रथम ही जोधा क्रोध पठायौ।
आइ सामुई जुद्ध भूमि मैं ऐसे वचन सुनायौ॥६४॥

क्रोध उवाच

मैं हौं क्रोध जहाँ मैं आऊँ तहाँ प्रलय ह्वै जाई।
साधुन के मन एक हि छिन मैं करौ असाधु महाई॥
विश्वामित्र बड़े जग तपसी, जिनके तप बल भारे।
तिन के हिये प्रवेश करौ मैं, सुत वसिष्ठ के मारे॥६५॥

जाके हिये वसै भै सो सुत मात पिता संघारे।
और कहाँ लौं कहौं आपु ही आपुहि कौं सो मारे॥
ये बातें सुनि नृप विबेक तहँ अपनों सुभट पठायौ।
सहनशील जेहि छिमा कहत तिन क्रोध हि वचन सनायौ॥६६॥

सहनशीलोवाच

अरे मूढ़ जिहि थल मैं आऊँ तहाँ न तू ठहराई।
कैसोउ अगिनि पुंज मैं आवै, देखैं जल ह्वै जाई॥
तैं जु कही रिषि विश्वमित्र के हिये प्रवेश मैं कीनौं।
सुत वसिष्ट के मारे तिन ते इह अपवल कह दीनौ॥६७॥

कहि तौ रिषि नें जब वसिष्ठ की सहनशीलता जानी ।
तब सु परे पग आइ तहाँ तू क्यौं न रह्यौ अभिमानी ।।
तातैं मो आगैं तुहि वन्यौ सकल जग जानैं ।
रे मतिहीन बड़ाई अपनी क्यौं तू वृथा बखानैं ।।६८।।

ऐसें सुनि कैं बचन छिमा के डरपि भूमि रणमाहीं ।
भाजि गयौ वह क्रोध न जानौ कितै गयौ किहि ठाँही ।।
तव नृप महामोह नैं अपनौ जोधा काम पठायौ ।
रण मैं आइ गरब अति करिकैं ऐसे बचन सुनायौ ।।६९।।

कामोवाच

मैं हूँ काम काम मेरे तुम सुनौं जहाँ मैं आऊं ।
जप तपे नेम प्रेम संजम व्रत इनकौं पुंज बहाऊं ।।
वड़े बड़े रिषि तपसी डोलैं भूले त्रिय दुति माँहीं ।
गम्य अगम्य न सूझै गिनकौ महा अंध है जाहीं ।।७०।।

मेरो वल लखि मैं अबला करि सवल सभै बस कीने ।
चौदह लोकनि घर घर त्रिय के रहत पुरुष आधीने ।।
मेरे बान समान आन नहिं अद्भुत गति जिन माँहीं ।
फूलन के अरु दृष्टि न आवैं मन-चचल ह्वै जाहीं ।।७१।।

सो विवेक नैं कामु सामु ही तब बैराग पठायौ ।
आइ महारण मैं बोल्यो तहँ रिपु दल गर्व गँवायौ ।।

वैराग्य उवाच

अरे काम इह बाम जगत मैं महा नरक की सामाँ ।
हाड़ माँस अरु पीन रुधिर हैं, ऊपर लिपट्यौ चामाँ ।।७२।।

सबै द्वार मल वहैं रैनि दिन इह स्वरूप है जाकौ ।
देखैं बोलैं छूयैं पाप यह लब ग्रंथ न मत ताकौ ।।
झूठौ सुख सोऊ इक छिनकों नरक भोग बहु तासौं ।
नैंक विचारि देखियै तौ मनु होत महाघिन जासौं ।।७३।।

---

६८. विश्वमित्र के='ख' में 'विश्वामित्र ।'
७१ ह्वै जाहीं = 'ख' में सुधि ही ।

तात्रिय की तू करै बड़ाई कहै इहै वल मेरौ।
तनक रोस करि हरनैं जारौ कहाँ गयौ वल तेरौ ॥
जिन के चित मैं वसौं आनि ते त्रिय तिनका सम जानैं।
रात भोग कूँ भार गिनैं तू मिथ्या वल निज मानैं ॥७४॥

सुनि वैराग वचन तव डरि कैं काम देव तहँ भाज्यो।
महा मोह के दल ते कढ़ि तब लोभ आय रण गाज्यौ ॥

लोभ उवाच

लोभ कही मैं जहाँ विराजौं ताके गुण सब भाजैं।
भारो कौं हलुकौ करि डारैं औगुन तहाँ विराजैं ॥७५॥

फाँसी डारि बटोहिनि मारै हाथ कछू नहिं आवै।
सो वह मेरीयै अधिकाई निसिदिन हिंसा भावै ॥
सगरे जग मैं सबके मन में मेरौ ही नित वासा।
मेरे कारन जिएँ जीव सब, छिन-छिन बाँधें, आसा ॥७६॥

ऐसे वचन लोभ के सुनि कैं नृप संतोष पठायौ।
आइ जुद्ध की भूमि तहाँ उनि लोभ हि वचन सुनायौ ॥

संतोष उवाच

अरे दीन क्यों घर घर डोलै सवहिन सीस नवावै।
हाथ कछू आवै नहिं वढ़ती लिख्यौ ललाट सुपावै ॥७७॥

लोभी जरौ करत चिंता मैं निसि वासर दुख रोवै।
संतोषी थोरे सुष मानैं पग पसार सुख सोवै ॥
हमरे बल सुन जिनके मन हम ते वैठे मन माँहीं।
तिन आगे कर जोरि नृपति बहु ठाढ़े रहत सदा हीं ॥७८॥

---

७६. मेरी यै=मेरी ही।
७७. द्वितीय पंक्ति 'ख' में नहीं है।

हमरी ग्रंथनि माँहिं वड़ाई तू खल निन्दा लायक ।
सुख संतोष समान नहि दूजौ वचन कहे मुनि नायक ।।
मो आयें तैं बंश नसैं तव ज्यौं तम रवि के आगे ।
कहा जानि अपनी प्रभुता तू करत झूठ अनुरागे ।।७९।।

ऐसें सुनि संतोष वचन कों लोभजु गयौ तहाँ तैं ।
आइ गरव तव मोह ओरतें वोलौ वचन रिसातैं ।।
गरव कही मैं सर्वस नासों जाके हिय में वासा ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य लच्छमी करौं सवन कौ नासा ।।८०।।

जहाँ जहाँ मैं होंहुँ तासु की सदगति होनन पावै ।
नरक पठावन कौं मोसों अरु जग मैं द्रष्टि न आवै ।।
यातें मोहि जोधा अति जानौं महामोह कूँ भाऊँ ।
वाके चित प्रवृति मारग की सो हौं चाल चलाऊँ ।।८१।।

और दोष धर्मनि तें भाजैं मोहिन कोइ भजावै ।
यातें मम समान कोउ दूजौ और दृष्टि नहि आवै ।।
वचन गरव के सरव सुने तव करि विवेक चित भायौ ।
इततें दौरि नम्रता रण मैं गर्वहि बचन सुनायौ ।।८२।।

नम्रता उवाच

अरे कूर जिनके चित होते तोहि धूरि सम जानैं ।
मेरे आये सकल धर्म सुख वढ़त जगत सव मानैं ।।
जामैं तू तिहिं के सव वैरी मैं जहँ तिहि सव चाहैं ।
वात प्रसिद्ध सत्रु जग जाकौ ताकी जीत कहाँ हैं ।।८३।।

तेरौ धारनहार हार तिहि मो धारे जय होई ।
अपनी अरु मेरी तू जग में प्रकट देखि लै सोई ।।
गरव होत जड़ फूल डारिये अरु सुनि मो अधिकाई ।
नल जल जड़हु गहैं नम्रता सो ऊँचौ है जाई ।।८४।।

---

८० तव=तेरे

८०. तव मोह='ख' महामोह । रिसातैं=क्रोध से ।

८३. सव मानैं='ख' में सव जानैं ।

कहै पुरान नम्रता जिहि तिहि गरव सरव नसि जाँहीं।
येते पर तू कहा वकतु है वृथावाद रणमाँही॥
भाज्यौ गरव झूठ तव आलयौ उततैं रण के माँहीं।
महा मोह को है प्रधान सो, बोलौ यौं उहि ठाँहीं॥८५॥

झूठ उवाच

झूठ कही मेरौ प्रभाव सव लोक लोक सु बषानें।
मोही सों व्यौहार चलै इह सव ही जग में जानें॥
राजहिं रंक करौं मैं छिन मैं धर्मी धर्म गवाऊँ।
तनक वात मैं आई प्रलै करि डारौं नरक पठाऊँ॥८६॥

कहँ लौ कहौं वाल जदुवंसी मिथ्या वात वनाई।
वोले झूठ रिपिन सों तासों कुल की नीव नसाई॥
मेरे कारन धर्मपुत्र कौं नैंनन नरक दिखायौ।
याते मो समान वल औरैं काहू नहिं जग पायौ॥८७॥

तुमरे जोधा जीवहि ऊँचौ लोक देन चित धारै।
हमरी यहै सवलता ह्वाँ नहिं जान देहिं अव डारैं॥
सुनि कैं वात झूठ की इततें साँच विवेक पठायौ।
आइ महारण मैं तहाँ वोल्यौ रिपुगण गरव गँवायौ॥८८॥

सत्य उवाच

रे पापी! क्यौं गरव करतु है, मेरे गुन नहिं जानैं।
कैसेउ अपराधी सो छूटैं जो मुख साँच वखानैं॥
साँचे कौं सव कियौ साँच सों चलैं कुशल सों राजैं।
सूरज चंद्रमा साँच चलैं तैं अपने लोक विराजैं॥८९॥

शेष सीस पर सकल सृष्टि मैं राखत साँच निवाहैं।
साँचहिं सों आवै ग्रीषम अरु पावस सीत सदा हैं॥
अरे झूठ मेरे सम क्यौं तू देखि विचारहि यामैं।
झूठे नग अरु साँचे नग मैं कितौ फेर कहु तामैं॥९०॥

मेरे आगें यौं तू भाजै ज्यौं मृग बाघ निहारैं।
साँच समान न पुन्य और यौं सबै पुराण उचारैं।।
यौ सुनि झूठ भज्यौ त्योंही सब महामोह दल भाज्यौ।
कोऊ नहि ठहिराय सक्यौ तब रण बिबेक दल गाज्यौ।।६१।।

महामोह जानी नहिं काहू भाजि गयौ किस वारी।
इतै जीत की दुंदभि बाजी नृप विवेक कैं भारी।
तवै सत्य संतोष शील सत संग सबै ढिग आये।
किये प्रनाम बिजय के नृप कौं सुमन सु सुर वरषाये।।६२।।

तब बिवेक के प्रगट्यौ पुत्र प्रबोध महा सुखकारी।
बिद्या नाम सुता इक प्रगटी जग जन तारनि हारी।।
बेद पुराण ग्रंथ सबहि मिलि मंगल शब्द उचारौ।
जहाँ तहाँ आनँद रूप सौं राज समाज निहारौ।।६३।।

मन कौं महा मलीन देखि कैं तब विद्या ढिग आई।
भूलि निवारन कारण ताकौ सुखद रीति समुझाई।।
काकौ सोच करै मन राजा सकल जगत भ्रम जानौं।
मात पिता त्रिय पुत्र सहोदर ये सब झूठे मानौ।।६४।।

पवन पाइ ज्यों पात इकट्ठे आइ होत इक ठाँहीं।
एक पवन ऐसी ज्यों आवै पृथक पृथक है जाहीं।।
त्यों सब जग के संगी जानौ इन सों मोह न कीजै।
जुआँ कीट तन ते उपजै त्यों क्यों न मानि सुत लीजै।।६५।।

जो जो दृष्टि परै आँखिन सों सो सो सब नसि जाई।
अविनाशी निज रूप आतमा कबहूँ कहूँ न जाई।।
तब मन कही कुटुम्ब नेह यह छूटै हिय तें नाहीं।
क्यों कर तजौ चित्त कीअतिरुचि त्रिय सुत धन घर माँहीं।।६६।।

६२. किस वारी=किस समय
६७. इहि वारी=इस समय।

देवी कही मोहमइ माया सो तैं हिय अब धारी।
तातैं माया की सु कथा इक, कहौं सुनौ इहिवारी ॥

कथा

मालव देश भयो इक ब्राह्मरण गाघ नाम है जाकौ।
धर्म कर्म जप तप संजम में महानेह है ताकौ ॥९७॥

एक समय जल मैं प्रवेश करि आठ मास तप कीनौं।
ताकों धीरज देखि विष्णु जू आइ सु दर्शन दीनौं ॥
कही वाहिरैं आउ विप्रवर माँग जु मन मैं होई।
इन माँग्यौ प्रभु माया तुम्हरी देख्यौ चाहत सोई ॥९८॥

एवमस्तु कहि अंतरधान भये भगवान तहाँ ही।
ता दिन तैं वाके चित माया देखन की बहु चाहीं ॥
एक द्यौस जल मध्य न्याह कैं, ध्यान धरौ हो ज्यौंही।
देखन कहँ जब आयौ घर तहँ देह गई छुटि त्यौंही ॥९९॥

रोवत सबै कुटुम्ब गोद लै जननी चूमत मुख कौं।
पुनि लै गये नदी तट कीनी क्रिया पाय अति दुख कौ ॥
जाइ जनम लीनौं चंडाल घर वाल-विनोद सुकीनौ।
पुनि विवाह किय मात पिता नै महामोह मनु लीनौं ॥१००॥

तरुणी संग लिये वनवन मैं वाग तड़ागन धावै।
पुनि संतान भई तिनके संग खेलत मोद वढ़ावै ॥
एक समैं त्रिय लैकें सुत कौं निज पितु गेह सिधारी।
वहाँ काल वस भये कुटुम्ब के लोग सबै तिहि वारी ॥१०१॥

इह चल्यौ जु हूरण मंडल तें पुर इक मग मैं आयौ।
कोर देश वह अति प्रसिद्ध है, पुन्य जोग तें पायौ ॥
भूप मरौ हो वहाँ, सबै मंत्रिन मिलि मंत्र विचारौ।
या नृप के कोउ वंश न अरु यह देश चाहिये पारौ ॥१०२॥

---

१०१. वहाँ काल बस='ख' ह्याँ काल वसि।
१०३ भूप मरौ....विचारौ='ख' में "वहाँ कौ भूप मरौ हो वहाँ के मंत्रिन मंत्र विचारौ।"

यातैं प्रात समैं जो आवै भूपति कीजै ताही ।
ऐसे सव अधिकारिनि मिलिकैं यहै वात हिय चाही ।।
यह कहुँ प्रात कह्यौ तव वहाँ के लोगन यह नृप कीनौं ।
लाग्यौ भोग भोगनैं वहु विधि राजकाज सुख लीनौ ।।१०३।।

छत्र सीस पर चोर ढरत हाथी घोड़ा दल साजै ।
चलै सिकार प्रताप वढ़्यौ बहु द्वार दुंदुभी वाजै ।।
बहुत सुन्दरी संग लै बागनि रागरंग नितु करई ।
स्रगवल नाम भयौ याकौ तहँ सत्रुनाश व्रत धरई ।।१०४।।

आठ वरष तहँ राज करौ वहु सत्रुनास इन कीने ।
इक दिन एक वाग मैं वह तिय चंडालिनि सुत लीने ।।
उतरी हुती तहाँ इह आयौ नृपहू त्रियन लिये ही ।
देखि पिताकौं पुत्र श्वपच वह लाग्यौ दौरि हिये ही ।।१०५।।

रोइ उठी चंडालिनि तरुनी क्यौं त्रिय पुत्र विसारे ।
सव रानी मिलि देखि रहीं कहैं कर्मनि भोग हमारे ।।

रानिनि जाइ गुरुहिं सौं पूछी क्यौं यह दोष नसाई ।
कही सु गुरु तनु दहौ अगिनि मैं परस दोष मिटि जाई ।।१०६।।

तव सव रानी जरी अगिनि में भिन भिन चिता वनाई ।
मंत्री मित्र महा घिनि करि कैं वहु उपास मति लाई ।।
इहि लज्जा इहहू चंडार तव जरौ अगिनि के माहीं ।
इते माँझ या विप्र गाधि की खुली आँखि उहि ठाँहीं ।।१०७।।

देखै वह तौ जल मैं ठाढ़ौ सँग के जप तप करहीं ।
भयौ महा संभ्रम इह मन कौं आयौ पुनि निज घर हीं ।।
सोचै चित कौं मरौ कौन चंडाल भयौ को राजा ।
कौन जरयौ हौं तौ यह जल मैं कैसो सुपन समाजा ।।१०८।।

---

१०६. कर्मनि योग हमारे='ख' में "कर्म योग हैं हमारे ।"

एक दिना इक अतिथि गाधि कैं आइ सु भौजन कीनौ ।
ताकौं यह पूछी किहि कारन तनु दुर्वल वल हीनौ ।।
अतिथि कही कछु दुक्ख हमारे गाधि कह्यौ नहि जाई ।
कीर देश मैं मास नेक हम रहे महा सुख पाई ।।१०९।।

राजा वहाँ इक स्रिगवल वरषैं आठ राज उहि कीनौं ।
पुनि वह जाति चंडाल कह्यौ तव सव लोगन तजि दीनौ ।।
रानी जरी अगिनि मैं सगरी प्रजा महा दुख पायौ ।
उनहूँ नृपति खिस्याइ देह निज पावक माँहि जरायौं ।।११०।।

एक माह हमहूँ वाके दरवार अन्न नित लीनौं ।
आइ गयौ गिल्यानि मोहि हूँ देश त्याग वह दोनौं ।।
जाइ प्रयाग करे हम वहुते स्नान दान व्रत भारी ।
अपनी शुचिता कारन यातें दुर्वल देह हमारी ।।१११।।

विद्या कहीं सुनौ मन राजा गाधि सुनी यौ वानी ।
वड़ौ अचंभौ भयौ चित्त कौं वात साँच सी सानी ।।
चल्यौ हूण मंडल पहिले ही जाइ गांउ वह देख्यौ ।
वेई ठौर जहाँ हो डोलौ घरहु दूर तें पेख्यौ ।।११२।।

वहुरि चल्यौ द्विज कीर देश कौं त्यौंही तहाँ निहारौ ।
लखे राज मंदिर वन उपवन जहँ जहँ हुत्यौ विहारौ ।।
पुनि वे लखी चिता जिहि रानिन देह आपनो जारी ।
वहुरि आपनी चिता निहारी भयौं अचंभौ भारी ।।११३।।

देखि चल्यौ ज्यौंही द्विज वह तहँ सुत चँडार वह देख्यौ ।
वह इह को लखि दौरि लग्यौ उर पिता आपनौ पेख्यौ ।।
विप्र छुड़ाय भग्यो वह पाछैं रोइ पुकारत आवै ।
तजैं जात क्यौं तात मोहि अव ऐसें टेरि सुनावै ।।११४।।

---

११२. वहुते=वहुत अधिक

ह्वाँ राजा के लोग हुते तिन भागत द्विज गहि लीनौं ।
रोवत बालक की धुनि सुनि पुनि दोउ न इकठौ कीनौ ।।
पूछन लगे कहाँ तू भाग्यौ बालक क्यौं यह रोवै ।
कारन कह इक सुनि कैं ब्राह्मन मोन भयौ मुख जोवै ।।११५।।

बालक बोलौ पिता हमारौ यह हम कूँ गहि दीजै ।
छाड़ें जात मोहि बहु दिन मैं मिल्यौ कृपा यह कीजै ।।
गाधि कही हौं तो ब्राह्मन हौं मालव देश रहौं जू ।
जप तप नेम महा व्रत संजय धर्म लिये निबहौं जू ।।११६।।

या कौं हौं पहिचानत नाँहीं पिता कहतु है कैसें ।
तब बालक बोलौ सुनिये जू बात सत्रै है जैसें ।।
जाति चँडारन ब्राह्मन हैं इह हून देश सब जानें ।
कै ह्वाँ के जन बोलौ कै ह्वाँ देहुँ पठै ज्यौ मानें ।।११७।।

यह सुनि नृप के जन नृप आगैं तबै दुहुन कों लाये ।
राजा सुनि कैं दुहूँ देश के लोग तहाँ सु बुलाये ।
पूछी सब कों साँच कहो तुम इह सु कौन जन आहीं ।
मालव के बोले इह तौ द्विज गाधि नाम है जाहीं ।।११८।।

उतै चँडार पुकार कहै इह हैं चँडार द्विज नाँही ।
राजा न्याय सकै न कछु करि सौचै निज मन माँहीं ।।
द्विज यह कहै विप्र यह तपसी कहै चँडार-चँडारें ।
कीजै कहा कछू निरधारन होत सुचित्त विचारैं ।।११९।

तब नृप कही कडाह मगावौ तप्त तेल इहि डारौ ।
जौ न जरै यह ब्राह्मन है तौ जरैं चँडार निहारौ ।।
इह सुनि कीर देश के बोले महाराज यह सुनिये ।
यह चेटकी चँडारिनि जरिहै इहौं बात सुनि गुनियै ।।१२० ।

आठ बरस ह्याँ राज करौ इन सिसुहौ तव पहिचानौं ।
तव रानी सब जरी अगिनि मैं परस सुपच सों मानौ ॥
इहू जरौ इहि ठाम आइ अब ब्राह्मन रूप दिखायौ ।
इह तौ सत्य चँडार चेटकी कीजै जो मन भायौ ॥१२१॥

जैसें इह नहिं जरौ चिता मैं तैसें ह्याँऊ न जरि है ।
याहि मारिये बेगि महीपति नहिं चेटक कछु करि है ॥
यह सुनि गाधि कही हो राजा हौं न जरौं किहु ठाँहीं ।
हौ न चँडार चेटकी हौ नहिं हौ द्विज मालव माँहीं ॥१२२॥

कौन पाप यह लोक लग्यौ अपलोक नहीं हौ जानौं ।
कौनहि देऊँ शाप अरु काकौ बुरौ चित्त मैं मानौं ॥
परुषारथ तें ब्राह्मन हौं ये क्यौ-चंडार वखानै ।
कौंन हेत ये कहत चेटकी कर्म सुगति को जानै ॥१२३॥

कीर देश के बोले जो द्विज शाप देहि किन आछैं ।
निश्चै है चंडार तू तेरे मारे पाप न पाछैं ॥
चारौ ओर कहै सब यौंही नृप इहि मारो चहिये ।
तब नृप कही सिखा मंडित यह करौ विलंव न गहियै ॥१२४॥

उपवीतहि उतारि गाधि इहि वेगि चँडार सँवारौ ।
मालव देश जाइ मेरे जन ह्वाँ ते याहि निकारौ ॥
ज्यौंही सिखा गई मुंडन कूँ भई अकाशहि वानी ।
भूलौ जिनि यह विप्र गाधि हैं सुनि निश्चै नृपमानी ॥१२५॥

सुनि अकाश वानी भ्रम भाग्यौ भूप दौरि पग लाग्यौ ।
आसीस दे तव गाधि गयौ घर चित विराग तव जाग्यौ ॥
करी तपस्या वहुत तबै भगवान दरश तिहि दीनौं ।
उन अस्तुति करि कही यही प्रभु मोहि सुपच क्यौ कीनौ ॥१२६॥

श्री भगवान कही तैं माया देखन कौ चित चाह्यौ ।
तातैं यही दिखायी तो मैं जिहि मरन जनम अवगाह्यौ ॥
तू नहिं उनको सुपच कीर कौ तू नहिं भूप भयौ है ।
यह सब झूठ निहारि विप्र यह माया चरित्त ठयौ है ॥१२७॥

तातैं भ्रम तू छाँड़ि ब्रह्म मैं लीन होहु द्विजराई ।
यह कहि अंतरधान भये प्रभु गाधि समाधि लगाई ।।
कै मन सुद्ध आपनो जग में विचरौ आनँद माँही ।
जीवन मुक्ति दशा द्विज पाई, रह्यौ चित्त भ्रम नाँही ।।१२८।।

यह माया की कथा सुनाई तातैं सुनि मन राजा ।
जनम मरन अरु सँग सबै भ्रम जानहु जगत समाजा ।।
तब मन कही सु बिद्या देवी ऐसी सीख सिखावहु ।
जातैं निरमल ह्वै सुख पाऊँ मोही मारग लावहु ।।१२९।।

तव विद्या वोलो मन राजा मारग सुगम बताऊँ ।
जिहि उपदेश तरें भव जन बहु सो अब तुम्हैं सुनाऊँ ।।
प्रथम धरौ वैराग जगत सौं अति उदासता ठानौं ।
जो जो कछु लखिवे मैं आवै सोइ विनासी मानौं ।।१३०।।

मात पिता त्रिय सुत कुटुम्ब ये संगी जानों नाँहीं ।
नदी नाव कौ जोग वन्यौ है, बहुरि जितै ति त जाँहीं ।।
कैसोउ प्रीतम होइ जगत मैं संग चलै नहिं कोऊ ।
अप अपने सुख कौं सो रोवैं इक सों रहै न सोऊ ।।१३१।।

प्रान छुटैं या प्रानी के तव नेह कुटुम्ब निहारौ ।
जिनको अति प्यारो तेई सव भाषैं वेगि निकारौ ।।
तात पिता अरु मात तिया सव यौंही बात कहै हैं ।
हय हाथी भूषन भँडार सब डार एकलौं जै हैं ।।१३२।।

कोटिन द्रव्य धरे कोठिन मैं कोठिन तेउ विलाने ।
सवै धनी मैं करनी जिन की तेऊ जात न जाने ।।
आयु कहै सत वरष सु आधी सोवत माँहि विताई ।
कछू रोग कछू सोग माँहि कछु उद्यम ढूँढ़त जाई ।।१३३।।

कछू विदेस नरेस चाकरी ता मधि कछू विहानी।
कहौं जीव कौं सुक्ख कहा जी मानि रह्यौ अभिमानी ॥
लाख लाख बरषन जे जीयें तेऊ सुने सिधारे।
तीनि लोक जीते जिहि रावन तेऊ काल पछारे ॥१३४॥

जीवन तौ अँजुरी को जीवन इक पल की सुधि नाँही।
याते याहि चाहिये जन कौं रचै न हित जग माँहीं ॥
वालपने मैं कह्यौ तरुन ह्वै करि हौं धरम विचारी।
तरुन भयें वृद्धापन पैं तव दृष्टि धरम की धारी ॥१३५॥

वृद्ध भयौ लयौ गोद मृत्यु नें श्रवनहिं समयौ आगैं।
जाकों तू बताइ है मूरख करि हौं धरम सु जागैं ॥
मृत्यु मात जग की जानौं मैं अद्भुत रीति निहारी।
वह सिसु गोद लेनि यह वृद्धहि राखत गोद मँझारी ॥१३६॥

वह सुगोद लै रूप सँवारत यह कुरूप करि डारै।
वह सु उदर तें काढ़ति यह वाहिर तें उदरहिं धारै ॥
सकल जगत की भंजनहारी सिर पर मृत्यु विराजै।
ये ते पर यह चेततु नाँहीं भूलि ताहि सो गाजै ॥१३७॥

अपनी आँखिनि लखै वड़े अरु छोटे चले सजाहीं।
तू सो वीच मैं कैसे वचि है समझ इती चित माँहीं ॥
जो जो मिलौ विछुरि है सो सो यह निश्चै करि जानौं।
कछू न थिर या जग मैं रहई भूलि नेह जनि ठानौं ॥१३८॥

और सुनौ अपने चित माँही करै विचार इतो है।
या जग मैं दुख आठ पहर हैं सुख कौ रूप कितौ है ॥
कोऊ छिन सुख जीभ कोऊ छिन तिया संग सुख मानौं।
सोऊ क्षधा अरु वल अधीन हैं नहीं तौ वहू विलानौं ॥१३९॥

---

१३७. ताहि सों गाजै='ख' में, फल लों गाजैं।

साठ घरी मैं सुखन घरी कौ दुख चिरकाल रहाई ।
रोग अंग पीड़ा नृप पीड़ा त्रास अनेक महाई ।।
दुख कौ चिन्ह बहुत हैं जग मैं जिनसों दुख पहिचानौं ।
रुदन विकलता दीन शब्द बहु जिन सुनि करुना आनौं ।।१४०।।

सुख कौ चिन्ह बतावौ को है क्योंकि जगत सुख नाँहीं ।
यातैं सब जग जानि दुःखमय रहिये आनँद माँहीं ।।
तातैं यह संसार असार निहारि सु सार विचारौ ।
अपने चित तैं सुनि मन राजा सकल दु-ख निरवारौ ।।१४१।।

पहिले हैं वैराग विसै सौं अपने चितै डिठावौ ।
ता पाछें भगवान भगति सों नीकी प्रीति लगावौ ।।
अब मुनि भक्ति सरूप सुगुन की परम कृपा प्रभु कीनी ।
सो नव बिधि है बेद बखानी कहौ परम रस भीनी ।।१४२।।

पहिली भक्ति श्रबन सौ प्रभु की कथा सुरुचि सों सुनिये ।
सो वह करी परीक्षित राजा श्री भागवत सु गुनिये ।।
दूजो है कीर्त्तन प्रभु कौ जसु परम मोद सों कहिये ।
श्री शुकदेव भेद जानों तिहि महालीन मन लहिये ।।१४३।।

तीजी सुमिरण ध्यान कहै जिहि सो प्रहलाद सभाई ।
चौथी पग सेवन सो लछमी करतु सदा चितु लाई ।।
भक्ति पाँचवी अर्चन पूजा सो राजा प्रभु कीनी ।
छठी भक्ति वंदना दंडवत सो अक्रूर हि दीनी ।।१४४।।

दास भाव सातइ पवन सुत सो कीनी चितु लाई ।
सख्य भक्ति आठई सखा हैं सो अर्जुन चितु पाई ।।
नवी भक्ति आत्मा समर्पन सो राजा बलि कीनी ।
पूरण भक्ति प्रेम दसई सो ब्रज वालनि वह लीनी ।।१४५।।

ऐसे प्रभु में किहूँ भाँति चितु श्रद्धा जुत ह्वै राखै ।
तौ इह जीव अविद्या ते छुटि भव सागर कौं नाखै ।।
अब सुनि ज्ञान रीति चेतन कौं निर्विकार जिय जानैं ।
निराकार निरलेप निरजन ताकौ वेद वखानैं ।।१४६।।

सुख दुख हर्ष सोक ये जग के ब्रह्म रूप में नाहीं।
अद्वितीय परमानंद वह है व्याप्यौ चर थिर माँहीं ।।
ब्रह्मा तें चीटी लौं अरु गिरि रजकरण रूप वही है।
बहु विधि सृष्टि दृष्टि जो लखियत सो वह आप सही है ।।१४७।।

अद्भुत रीति ब्रह्म की लखि ही सब में सबतें न्यारौ।
सब कुछ करै अकर्त्ता पुनि वह ऐसौ सरजन हारौ ।।
कछूक ताकी अद्भुत गति तौ सेवक ह्वै मुनि जो हैं।
अपने दृग देखैं सब पै न विचारैं कर्त्ता को हैं ।।१४८।।

प्रथम लहि इक नीर बूँद तें सकल शरीर बनाये।
कहौ कहाँ वे हुते बूँद मैं किनहूँ भेद न पाये ।।
कहौ बीज मैं बृक्ष कहाँ हौ कढ़ि अकाश जो लाग्यौ।
कहाँ तें भरी मधुरता फल में जिहि भवि जिय दुख भाग्यौ ।।१४९।।

रंग-रंग के फूल उपाये कहौ कहाँ रँग लीने।
ऐसे अद्भुत कर्म बहुत प्रभु या प्रकार हैं कींने ।।
यातैं कर्त्ता और अकर्ता यह विधि वाही सो है।
वाहौ कौ अनुभव नित कोजै सो माया नहिं मोहै ।।१५०।।

यह सुनि मन वैराग जुक्त ह्वै भक्ति ज्ञान मनु लायौ।
ह्वै समाधि मैं आधि व्याधि तजि परमानँद पद पायौ ।।
यह नाटक जब लख्यो नृपति नैं चित औरैं गति छायौ।
दाढ़ी सकल जगत की विषया, परमानंदहिं पायौ ।।१५१।।

कीर्त्तिवर्म राजा गोपालहिं बहुत धन्यता दीनीं।
जगत काज तें चित उदास करि भक्ति परम गति लीनी ।।
जो कोउ याहि सुनै रु सुनावै सोउ परम गति पावै।
'सूरति' सुकवि धन्य वह जग में किहु विधि हरिगुन गावै ।।१५२।।

इति श्री सूरति सुकवि विरचित प्रबोधचंद्रोदय नाटक भाषा संपूर्णम् ।।

———

१५२. 'ख' में द्वीतीय पंक्ति दढ़्यो हुतो जग के विषई, ज्यों पै परमारथ पायो।

रस-रत्न

रस-रत्न
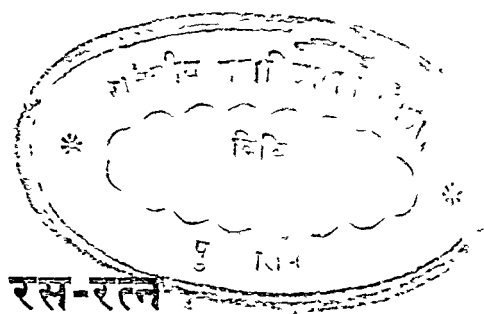
मंगलाचरण

दोहा

कमल-नयन कमलद वरन, कमलनाभि कमलाय।
तिनके चरन-कमल रहौ, मो मन जुत गुन जाय ॥१॥

नव-रस

दोहा

नव रस आदि सिंगार पुनि, हास्य करुन रुद वीर।
भय विभत्स अद्भुत वरनि, शान्त परम गुन धीर ॥२॥

शृंगार-रस-लक्षण

दोहा

'सूरति' संतत रहत है, रति कों पूरन अंग।
ताहि कहत सिंगार रस, केवल मदन-प्रसंग ॥३॥

नायक-नायिका-वर्णन

सो इह रस सिंगार में, वरनत कवि रस-लीन।
प्रथम नाइका-नाइकनि, वहुरि क्रियानि प्रवीन ॥४॥

---

१. कमलद=क—कमलदल, ख—कमलदल, ग—कमलदल, घ—कमलदल। कमलाय=ख-कमलाप। जाय=ख—जाप।

२. रुद=ख—रुद्र।

३. 'सूरति'='क' में सर्वत्र 'सूरत' है।

४. रस-लीन='क' में 'रसलीन' है जो रसलीन कवि का भ्रम पैदा करता है, किन्तु रसलीन कवि के 'रसप्रबोध' में यह छंद नहीं है। अतः 'रसलीन' का शुद्ध पाठ रस-लीन है जिसका अर्थ है—रस में निमग्न रहने वाले।

कवित्त

सुकिया बिबाहिता, सहित लाज, सेवै पति,
परकीया रमैं पर-पुरुष प्रमानिये।
गनिका रमति धन चाहै तहँ, सुकिया के,
भेद तीनि, मुग्धा में लाज अति जानिये।
मध्या लाज काम सम, प्रौढ़ा काम रस अति,
'सूरति' कहत मुग्धा द्वै तहाँ मानिये।
जोबन कौं तन में न आयौ जानै सो अग्यात,
जानत है आयौ, सो ही ग्यात है बखानिये ॥५॥

दोहा

नव दुलही दिन दुत बढ़ै, नव तरुनी सँधि-पाइ।
नव कामा सिसु बचन छल, रति में लज्जा आइ ॥६॥

ककुभा छंद

मध्या एक अरूढ़ यौवना, प्रगल्भ वचना जानौ।
प्रादुर्भूत अनंगा बहुस्यौं, सुरति विचित्रा मानौ ॥
प्रौढ़ा इक समस्त रस चतुरा, चित विभ्रम दुति सानी।
आक्रामित मन वच क्रम बस पिय, लब्ध्वा पति कुलमानी ॥७॥

दोहा

साधारन अरु पतिव्रता, स्वकिया दुविधि बखान।
खँडिता तीजै भेद तैं, साधारन में जान ॥८॥

---

५. सहित—'ख' एवं ग—सहित 'क' सहिन। सेवै—'क' में सेवा। द्वै =
ख—सु।

६. वचन = 'क'—वचस।

७. चित='क'—चित्र।

कवित्त

परकीया व्याही अनव्याही ऊढ़ा अनूढ़ा है,
तहाँ षट भेद गुप्त रति कौं दुरावई।
क्रिया औ वचन में करति चातुरी विदग्धा,
जाकी प्रीति लेखे सखी लक्छिता कहावई ॥
बहु नर रमैं कुलटा है, पिय को मिलन,
'सूरति' सुनै तें मुदिता सो सुख पावई।
थानो विनसै सहेत, आगैं हीय कै न होइ,
पहुँचे न अनुसया ना सो तन तावई ॥९॥

उदाहरण

दोहा

आज बाग संकेत कै, सुनि पथिकनि को वास।
काहे तैं यह मलिन मन, बैठी निपट उदास ॥१०॥

पित्रादि परतंत्र सु कन्या, जाहि सुरति अति गूढ़।
पित्रादि विक्रता स्वदासी, द्वै विधि जानि अनूढ़ ॥११॥

अष्ट नायका

कवित्त

पति है अधीन जाकै, है स्वाधीनपतिका सो
क्यौं न आयौ पिय सोचै उत्का बखानिये
लखति वासकसज्जा करिकें सिंगार मग,
भोर आवै पति जाकौ खंडिता प्रमानिये।
मानै न मनायें पाछैं नचै कलहांतरिता
पिय है विदेस जाको प्रोपिता सु मानिये।
'सूरति' सु विप्रलब्धा पावै न संकेत पिय,
बोलै जाय मिलै अभिसारिका सु जानिये ॥१२॥

---

८. दुविधि='क' द्विविधि। खंडिता—तैं=ग—खंडितादि जे भेद ते।
९. सहेत—ख—सहेट। 'ख' प्रति में इस छंद की क्रम संख्या १० है।
थानो—सहेत='ग'—थान विनसै सहेठ।
११. अनूढ़=ख—अगूढ़।
१२. प्रमानियै='क' एवं 'ख'—बखानियै।

दुहा

प्रेम काम बस मद लिये, त्रिय अभिसारिक सोइ।
जौन्ह अँध्यारै गमन तैं, सुक्ला कृष्णा होइ ॥१३॥

कवित्त

सुनै पिय गौंन प्रात प्रतिकाप्रवत्स्य सोई,
रूप प्रेम गुन कुल गर्विता कहावही ॥
और तिय के सँभोग चिन्ह देखि पावे दुख,
अन्यसंभोगदुखिता कहिकैं गनावही ॥
जेष्ठा सु जापै अति प्यार, घटि सो कनिष्टा
धीरा कोप दुरै वाक चौगुनी सुनावही ॥
कोप न दुराइ जानै परुष कहै अधीरा
धीराधीरा कोप गोप प्रगट जनावही ॥१४॥

दोहा

प्रौढ़ा धीरा सादरा, आकृति गुप्ता होइ।
आदर मान अनादरै, आकृति दुरबै सोइ ॥१५॥

कवित्त

उत्तमा ते अपमान करैहू न मान करैं
मध्यमा ते जैसे देखि तैसें अनुसरहीं।
अधमा बिनहिं काज रूठै चारि जाति सुनौ
पद्मिनी सहज सुवास मन हरही।
चित्रनी चतुर चित पिय बनी ठनी देह
संखनी सकोप देह लाँवी डगें धरही।
ठेंगनीं सथूल अंग हस्तनी कहत वर्नि
इनकौ बिस्तार कवि ग्रन्थनि में करहीं ॥१६॥

---

१३. त्रिय अभिसारिक='ग'—त्रिविधि अभिसरत।

१४. धीराधीरा='क'—धीरा।

१५. दुरबै=छिपाये।

१६. लाँवी=लम्वी, दूर-दूर।

चार दर्शन

कवित्त

चित्र मे जो देखिये सो चित्र दरसन देखै
    सुपन में सुपन दरसे ताहि कहिये।
प्रतिच्छ के देखैं कहै साक्षात दरशन
    पुनि-श्रवन दरस सुने कानन तैं गहिये।
एक गाँव बसैं अनमिले पूर्वानुराग
    विदिस प्रवास औ करुन दुख दहिये।
मरनहू विरह सो त्रिविधि लघु मध्य गुरु
    होहिं देखें बोलें चिन्ह आँन तिय लहिये ।।१७।।

उत्तर

दोहा

औरु तरुनि सम्बंध ए, ईर्षा जन्य सु जानि।
और प्रकारन तें हुवै, प्रणय जन्य ते मानि ।।१८।।

दोहा

द्विविधि सिंगार सँजोग इक, कहि वियोग कवि आदि।
तहँ वियोग श्रुति चार विधि, पूरव अनुरागादि ।।१९।।

दोहा

एक मनोरथ हेतु कैं, विरह जु उतका माहिं।
सापज दूजो दोष विनु, गुरु कैं उपजै नाहिं ।।२०।।

---

१७. आँन=अन्य ।

१९. पूरव—'ख'—पुर्वा ।

दोहा

विप्रलंभानंतर सु तिहिं, नाम कहत सुख दानि ।
विप्रलंभ चित कों भये, होय जोग यह जानि ।।२१।।

दोहा

अनुत्पन्न विप्रलंभ तिहि, नाम कहत कवि लोग ।
अकसमात लखि चित लगै, दूजौ यह संजोग ।।२२।।

दोहा

तहाँ प्रछल प्रकास विधि, दंपति जानै जासु ।
कै निज सम अलि प्रछल सों, सब जानें सुप्रकासु ।।२३।।

दोहा

प्रेम सोभ अरु परमथिर, शिव-गौरीनि मजिष्ट ।
नील हीन-थिरु राम सिय, राग कुसुंभन शिष्ट ।।२४।।

दश-दशा वर्णन

कवित्त

नैन मन बैन तन मिल्यौ चाहै अभिलास,
मिलियें सु क्यौं करिये चिंता दुख दानियैं ।
पिय गुन गुनिवौ सु है गुन-कथन रस,
सुमिरन सोई इसमृति कैं बखानिये ।
सुखद दुखद होत उद्वेग व्यर्थ वचसो ।
प्रलाप रोवै हँसे उनमाद मानियें ।
व्याधि अंग विवरन जड़ता सौ जड़ भये,
दसहीं अवस्था सौ तौ मरन प्रमानियें ।।२५।।

---

२१. विप्रलंभ चित—मूल प्रति में इस दोहे की संख्या २२ दी गई है । आगे अन्य छंदों पर भी लिपिकार ने २२ से आगे का क्रम ही चलाया है ।

२३. 'क' प्रति में इसकी क्रम संख्या २४ है ।

२४. 'क' प्रति में इसकी भी क्रम संख्या २५ है ।

चौपाई

चक्षु राग चित संग संकल्प।
निद्रा छेदन तनुता अल्प।
विषय निवृत्ति त्रषा कौ नासु,
उन्मत जड़ता अंत दसासु ॥२६॥

कवित्त

वचन रचन सौं मनावै ते उपाय साम,
मिस सों दै भेंट तेई दान के उपाइ है।
सखी फोरि लीजे भेद पाइ परै प्रनति है,
औ प्रसंग कै छुड़ैये उपेच्छा कहाइ है।
प्रसंग विधंस डर दै छुटैयै मान,
जहाँ ए षट उपाय मान मोचन के भाइ है।
'सूरति' सुकवि स्वयं दूत तासौं कहत है,
दूतपनौ करै जहाँ दंपति बनाइ है ॥२७॥

भाव-वर्णन

कवित्त

मन को विकार भाव, बोधक सो अनुभाव,
हेतु रस है विभाव, द्वै विधि सो गहिये।
आलंबन जिन्हैं अवलंबे रति पति रस,
दीपन करै जो सोई उद्दीपन कहिये।
स्थंभन, स्वेद, स्वर-भंग, कंपन, विवर्ण अश्रु,
रोमंच प्रलय विधि सात्विक सो लहिये।
रति, हास, सोक, क्रोध, उछाह रु, भय, निंदा,
विस्मै, समताई, भाव नीके जानि रहिये ॥२८॥

---

२६. 'क' में इसकी क्रम संख्या २७ है।
२७. वचन रचन=वचन-रचना, वाक्—चातुरी।
२८. गहिबे समझिये। काव्य सिद्धान्त में यही छंद संख्या ८५ पर है।

स्थायी भाव का लक्षण

दोहा

आदि अन्त ठहराइ जो, रस कै थाई भाव।
बिना नियम उपजै रसनि, बिभिचारिनि सँग नाँव ।।२९।।

कवित्त

निर्वेद, ग्लानि, संका, गरब, अमर्ष, चिंता,
मोह, दीनता असूया, इसमृतिय, जानियै।
मद, श्रम, उनमाद, आलस, हरष, ब्रीड़ा,
जड़ता अबेग धृति भय मानियै।
आकृति गुपति चपलता औ अपसमार,
उतकंठ निंद्रा औ सुपन बोध ठानियै।
उग्रता, विषाद, व्याधि, वितरक, मृत्यु-जुत,
एई सब विभिचारी भाव कै बखानियै ।।३०।।

दोहा

रत्यादिक थाई जु है, थिर न होहि जिहि ठाम।
तहँ इन हूँ कौं जानियैं, संचारी गुन धाम ।।३३।।

हाव-वर्णन

कवित्त

सिंगार के भावते क्रिया जे उपजे ते हाव,
प्रेम तें जु भूले लाज हेला हाव जानियै।
भेप धरि लीला करै लीला हाव ललित सु
वोलनि चलनि सुकुमारता वखानियै।
गर्व वढ़ै मद हाव विभ्रम विचल वास,
वोलि सकै लाज तैंन विहुती प्रमानियै।
चातुरी चितौनि क्रिया वोलनि विलास चारु,
क्रोध भय हर्ष किलकिंचित में जानिये ।।३२।।

---

२९. काव्य सिद्धान्त में भी यह छंद संख्या ८६ पर है।

३०. क्रोड़ा—'क' क्रीड़ा।
भाव—,क' नॉव।

३१. 'क' प्रति में इसकी क्रम संख्या ३० दी गई है।

३२. जानिये—'क' मानिये। 'क' में इसकी क्रम संख्या ३१ दी गई है।

कवित्त

भूषन अनादर करै विछिति औ विव्वोक,
पिय कौं अनादर कपट के गुमान सौं।
बुद्धि बल सात्विक दुराइबो 'सु' मोट्टाइत,
कुट्टमित केलि सुख दुख के प्रमान सौं।
परासय वोध जहाँ वोधक कहत ताहि,
'सूरति' सुकवि जानैं परम सयान सौं।
प्रीति प्रगटन हेत दंपति करै जो कछु,
तिन्हैं कवि कहैं सब चेष्टा बषान सौं ॥३३॥

दोहा

तपन हाव तहँ विकलता, मुग्ध-मुग्ध सी बात।
कछु भूषरण विच्छिति हसित, चकित केलि विख्यात ॥३४॥

अलंकार तरुनीन के, अष्टबिंस परकासु।
तिन मैं अंगज तीन हैं, भाव हाव हेलासु ॥३५॥

सात अयतज सोम है, प्रकृतिज और गनाइ।
तहाँ भाव मन की विकृति, प्रथमहि कह्यो सुनाइ ॥३६॥

हाव सु मदन विकार तन, हेला अति प्रगटाउ।
अवर अयत्नज सात तें, सोभा आदि गनाउ ॥३७॥

तन दुति सोभा मैंन जुत, कांति दीप्ति अति सोइ।
ज्यों तिय रहै सुहाय त्यौं, वहै माधुरी होइ ॥३८॥

निधरकई सु प्रगलभता, विनय सील जहँ होइ।
है उदारता धीरता, मन अचपल विधि सोइ ॥३९॥

नायक लक्षरण

सहित रूप गुन तेज-धन, दाता तरुन प्रवीन।
सो नाइक विधि चारि तहँ, वरनत परम प्रवीन ॥४०॥

---

३३. 'क' में इसकी क्रम संख्या ३२ दी गई है।

३४. 'क' में इसकी क्रम संख्या ३३ दी गई है। आगे भी क्रम संख्या इसी प्रकार मिलती है।

३८. दीप्ति—'क' दीवि।

४०. तरुन= 'क' करुन।

कवित्त

एक निज नारी ही सों हेत अनुकूल सोई,
वहु नारी प्रीति सम दच्छ मन मानियै।
मीठी सुख कहें सठ धृष्ट कौंन लाज कहूँ,
स्वकिया कौ पति ताहि पति कै प्रमानिये।
परकीया-पति उपपति गनिका को पति,
वैसिक कहत रस ग्रंथनि बखानियै।
'सूरति' सु कवि ऐसे मानी अनभिज्ञ आदि,
औरु नाइकनिहू के भेद बहु जानियैं ॥४१॥

दोहा

सुखी अर्चित कला-निलय, धीर ललित सुकुमार।
सुचि बिनीत क्षुतिगुन सहित, धौंर सांत निरधार ॥४२॥

जय जुत धीरोदात्त कहि, सव्रत छमी गंभीर।
निज गुण वक्ता गर्व छल, जुत वह उद्धत धीर ॥४३॥

दोहा

उत्तमादि ज्यो नाइका, त्यौं नाइक हू जानि।
चतुर चतुर प्रत्येक त्रय, अड़तालीस बखानि ॥४४॥

दोहा

प्रति नाइक गुन सहित पै, अनुचितकारी होइ।
उप नाइक नाइक सद्रस, पूजनीय पर सोइ ॥४५॥

नाइक सुभ गुन कछु कपटि, अनुनायक वह नाम।
अरि पत्नी प्रति नाइका, कै प्रतिनाइक वाम ॥४६॥

---

४१. नाइकनिहूके=नायकों के।
४३. सव्रत='ग'—सत्व्रत।
४५. उप—सद्रस='ग' उपमाना इनके सद्रस।
४६. अरि पत्नी—'क' न्यु सपत्नी।

सम कछु घटि उपनाइका, जैसें कठिका नारि।
लघुता जुत घटि अनुनाइका, जनतियादि अनुहारि ॥४७॥

पीठ मर्द मंत्री सहस, चेट निपुन मधि सेव।
गुन प्रवीन विट हास रस, रसिक विदूपक भेव ॥४८॥

कवित्त

स्वकीया के त्रयोदस भेद सब जानों ऐसैं,
मध्या प्रौढ़ा धीरादिक भेदनि सों ठानिये।
पुनि जेष्टादि जोरैं द्वादस ए मुग्धा एक,
परकीया दुविधि सामान्या एक मानिये।
शोडस ए आठ गुनैं एक सौ अठाईस ऊ,
उत्तमादि कीनै तीन अस्सी चार जानिये।
सूरति सुकवि दिव्या-दिव्य भेद कीने ऐसैं,
ग्यारह सै बावन यों नाइका बखानिये ॥४९॥

द्वादश आभरण

दोहा

सीस भाल श्रुति नासिका, ग्रीवा उर कटि बाहु।
मूल पानि अंगुल चरन, भूपन रचि अवगाहु ॥५०॥

पोडश शृंगार

मंजन माँग कच बिंदु कजल, तिल मुख रद अँगराग।
सुरभि चित्रपट अल सुमन, महँदी जावक लाग ॥५१॥

भावानुसार नायका भेद

समय देसवय भावतें, वहुत त्रियनि के भेद।
कवि कोविद वल वुद्धितें, समझि लेत विनु खेद ॥५२॥

---

४७. जनतियादि=जनति आदि।
४९. गुनैं—'क' जोरैं।

दोहा

मध्या प्रौढ़ा आठ करि, धीरादिक जेष्टादि ।
मुग्ध चारि दस परकिया,गनिक सु त्रैंसठि आदि ।।५३।।

द्वादस त्रय सौं जोरि पुनि, उत्तमादि सुविचार ।
दिव्यादिब्य किये सु षट, सहस आठ सौ चारि ।।५४।।

चारि गर्विता देस विधि, जोरि जाति सों नाम ।
चारि लाख पैतिस सहस, चारि सौ छप्पन वाम ।।५५।।

अनुसयना मुदितादि के, देस काल बहु भाव ।
कियै होति हैं नाइका, कोटिनि विधि कविराव ।।५६।।

दंपति के रस भोग कौं, बरनत सुरत सुजान ।
सुरत अंत जो बरनिये, सो सुरतांत बखान ।।५७।।

धाय सदन सखि जनिय घर, सूने ग्रह बन ओर ।
न्यौते मिस उत्सवनि में, प्रथम मिलन ए ठोर ।।५८।।

नाइनि मालिनि वढ़इनी, जनी परोसिनि बाल ।
धाइ नटी संन्यासनी, दूती सव सब काल ।।५९।।

रस पारै निज ओर तें, मन की उक्ति उपाइ ।
कही कहै संदेस कछु, उत्तमादि सखि गाइ ।।६०।।

सखी करम सिक्षा बिनय मान मोचिबो जानि ।
उपालंभ झुकिवो रमन, रुचि सिंगार वखानि ।।६१।।

मंद हास नैंननि हंसैं, कल धुनि सो कल हास ।
अति तैं अति परिजन हंसें, सो परहास प्रकास ।।६२।।

जिहिं जिहिं जैसा लच्छननि, कनिये जहाँ कवित्त ।
सो रस वरनन वूझिये, वुध जन अपने चित्त ।।६३।।

---

५५. वाम—'क' दांम ।

चौदह ए सब कवित्त हैं, चौदह रतन प्रमान ।
यातें नाम सु ग्रंथ कौ, यह रसरत्न सुजान ।।६४।।

वसु रस मुनि विधु (१७६८) संवतहि,
माधव रवि दिन पाइ ।
रच्यौ ग्रंथ 'सूरति' सु यह, लहि श्रीकृष्ण सहाइ ।।६५।।

इति रसरत्न

———

टीका-सम्बन्धी दोहे

अति दुरंत भव निधि सुरति, रहै संत पद पाइ ।
सुख अनंत सहजें रहै, जौ भगवंत सहाइ ।।१।।

पोथी यह रस-रतन की, चौदह कवित प्रसिद्ध ।
जिहि विधि इह टीका भई, सुनिये सो बुद्धि वृद्ध ।।२।।

नगर मेड़ता मध्य हैं, अति सुसील सुग्यान ।
नाम सु जिहि सुलतानमल, जिनकैं गुनि सनमान ।।३।।

तिनकी रुचि कै कारनैं, 'सूरति' सुकवि बनाइ ।
सुगम ग्रंथ ऐसौ कियौ, सब पै समुझ्यौ जाइ ।।४।।

कही नाइका तीन सै, साठि सु केसबदास ।
ग्यारहसै बावन इहाँ, ग्रंथ माँहि परकास ।।५।।

पै वह रसिकप्रिया विषै, कह्यौ वचन सुविवेक ।
देस काल वय भावतें, केसव जानि अनेक ।।६।।

उहि बचसौ ह्याँ नाइका, बरनी वहुत बिचारि ।
चारि लाख पैंतिस सहस, छप्पन जुत सत चारि ।।७।।

कवित्त

कोठारी रन धीर मेड़ता नगर
भये, बहुरि टीला जी लायक ।
भये जैतसी नाम लालचन्द सब सुखदायक ।
पुनि फतैचन्द तिन के भये,
पुनि सुजानमल जगत जस ।
सुलतानमल तिनकैं भये,
जिनके गुन चरचा सरस ।।८।।

---

८. 'ग' में यह छंद इस प्रकार है—
कोठारी रनधीर मेड़ता नगर भयेवर ।
अति प्रसिद्धि जिहि नाम भये भीवोजी तिहि घर ।
कल्लाजी पुनि भये, वहुरि टीलाजी लायक ।
भये जैतसी नाम लालचंद सब सुखदायक ।।

दोहा

तिन के हित टीका कियौ, सुनहु सकल कविराइ।
ओसवाल परसिद्ध जग, रिषभ गोत्र सुखदाइ ॥९॥
संवत सत अष्टादसैं, सावन छटि भृगुवार।
टीका हित सुलतानमल, रच्यौ अमल सुखसार ॥१०॥
रस पोथी को सुख जितो, हिय को चाह सुजान।
तौ टीका पढ़ियौ भलौ, नीको ह्वै है ग्यान ॥११॥

कवि–परिचय

नगर इटाए में प्रसिध, गली छपैंटी एक।
कान्यकुबिज पंडित गुनी, तामैं रहत अनेक ॥१॥
ज्ञाता शास्त्र पुरान के, मिश्र वेदमणि नाम।
तहाँ बसत विद्यावती, जिनकी सीला वाम ॥२॥
उननैं जाए सिंहमणि, बसे आगरे जाइ।
गोकुल-सौ गोकुलपुरा, रहे तहाँ सुख पाइ ॥३॥
जगदम्बा नै सुरति पै, कीन्हीं कृपा अपार।
नर-तनु दीन्हों करन कौं, पूरव पाप उधार ॥४॥
सत्रह सै इकतिस बरस, सुखद फाल्गुन मास।
सुकल पच्छ सातैं भयौ, घर में अति उल्लास ॥५॥
बड़े भयैं विद्या पढ़ी, कवि कोविद के साथ।
साधु-संत सिच्छा दई, 'सूरति' भये सनाथ ॥६॥
जगत जनम सुभ करन कौं, कीन्हौं प्रभु गुन-गान,
कृष्ण-राधिका के चरित, रचे हृदय धरि ध्यान ॥७॥
ईस भजन सिंगार अरु, कवित-रीति कौ ज्ञान।
'सूरति' मन संतोष प्रति, मिलौ महा-सम्मान ॥८॥

इति श्री सूरति मिश्र विरचितं रसरत्न टीका सम्पूर्णम्। श्री श्री श्र। श्री

'क' प्रति की पुष्पिका—

इति श्री सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका सम्पूर्णम्। लिखि है पठनार्थं महाराजा कुमार श्री जवानसिंहजी चिरंजीव रहज्यो। लिखितं ज्योतसी दयारामेण श्रीरस्तु। सम्वत १८७८ फागुन वद ८ गुरुवासरे। श्री। श्री। श्री। श्री।

श्री । लिखतं इन्द्रमणिना स्वीय पठनार्थम् । शुभमस्तु । श्री श्री श्री श्री श्री ।

'ख' प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका सम्पूर्ण । संवत् १९२७ मार्गसिर विद ७ भोमे लिखितं ब्राह्मस दसोरा कोटेश्वर उदयपुर मध्ये । श्री ।

काव्य-सिद्धान्त

काव्य-सिद्धान्त

मंगलाचरण

दोहा

श्री बृन्दावन-मधि लसैं, नित वय नवल किसोर ।
गौर-स्याम अभिराम तन, दंपति सम्पति मोर ।।१।।

कवि-वर्णन

कवि ताही कूँ कहत हैं, समझै कविता-अंग ।
व्रज-सविता-गुन जौ कहै, तौ छविता प्रति अंग ।।२।।

काव्य-लक्षण

वरनन मन-रंजन जहाँ, रीति अलौकिक होइ ।
निपुन कर्म कवि को जु तिहिं, काव्य कहत सब कोइ ।।३।।

काव्य-कारण

कारण देव प्रसाद जहँ, सक्ति कहत सब कोइ ।
वितपति अरु अभ्यास त्रय, बिना काव्य नहिं होय ।।४।।

जैसे बीज रु मृत्तिका, नीर मिलै सब आनि ।
तबहीं तरु प्रगटै सु त्यौं, कविता इनतैं जानि ।।५।।

---

१. मोर = मेरी ।

२. कूँ = को । कहै 'ख'—चहै ।

४. वितपति = 'क' प्रति में वितपति, व्युत्पत्ति, अवितपति = 'क' में अव्युत्पत्ति । जल विन न त्यौं = 'क' प्रति में जल्न चिनन तैं, 'ख' प्रति में जल वनन तैं ।

५. इनतैं = 'ख'—हीतें ।

प्रश्न

बीजादिक अग्र बिन न तरु, काव्य अवितपति माहिं ।

उत्तर

ज्यों अंकुर जल बिन न त्यौं, तरुता कविता नाहिं ॥६॥

काव्य-प्रयोजन

मोद उपावैं चित्त कूँ, करै असुभ कौ नासु ।
कीरति धन अरु इष्ट फल, कहैं प्रयोजन तासु ॥७॥

काव्य का रूप

शब्द अर्थ निरदोष जहँ, गुन भूषन जुत जानि ।
काव्य सुवृत रचना सरस, अलंकार मय मानि ॥८॥

शब्द-निरूपण

शब्द त्रविधि बाचक प्रथम, अरु लाच्छनिक सु जानि ।
बिंजक तहँ वाचिक त्रबिधि, रूढ़ जोग कहिं मानि ॥९॥

तीजै तिन मिश्रित कहैं, जैसे भू यह रूढ़ ।
जोगक विध-सुत आदि लख, पंकज मिश्रित गूढ़ ॥१०॥

वाच्यार्थ

अर्थ जु वाचिक शब्द कौ, वाच्य कहत हैं ताहि ।
कढ़ै जु अभिधा व्रत्त करि, आदि सँकेत जु आहि ॥११॥

ग्रंथान्तर

जात क्रिया गुन द्रव्य मय, शब्द-प्रवृत्ति निहारि ।
यह रति तरु मोहैं सुरंग, दारुयितो पटु चारु ॥१२॥

---

६. विनंन = 'ग'—विनत ।
८. जुत=युत, युक्त ।
९. बिजक=व्यंजका जोगकहँ=यौगिक को ।
१०. तिन = 'क'—तन ।
११. कढ़ै=निकले । इस छंद के वाद 'ग' में गद्य-टीका है । आगे हर छंद के वाद टीका दी गई है ।
१२. दारु इतौ='क' 'दारुयितो' । इस छंद के पश्चात् गद्य टीका है ।

लक्षणा विधि

शब्द लागि निकसै जहाँ, ब्रत्त लक्षणा होय

शब्द लाछनिक सो, जहाँ, बृत्ति लक्षना होइ।
ताकरि अरथ कढ़ै जुतिहि, लक्ष्य कहत सब कोइ ॥१३॥

मुख्य अर्थ को बाध अरु, अरथैं देइ लखाय।
ताहि लक्षना कहत हैं, सकल सु कवि कविराय ॥१४॥

लक्षणा के भेद

तहाँ लक्षणा दुविध है, इक निरूढ़ यह नाम।
दुतिय प्रयोजनबति कहैं; ग्रंथनि मति-गुन-धाम ॥१५॥

वह निरुढ़ लच्छना जहाँ, शब्द असंभव रूढ़।
नारंगी गाड़ी चतुर, कूरह कहैं अगूढ़ ॥१६॥

प्रयोजनवति जु भाँति षट सुद्धा गौनी होय।
सुद्धा चारि प्रकार तहँ, गौनी द्वै विधि जोय ॥१७॥

शुद्धा-भेद

उपादान लच्छना अवर, लच्छन लच्छना जान।
सारोपा इक है वहुरि, साधिवसाना मान ॥१८॥

उपादान लक्षणा

निज अरथहिं थापन जहाँ, तजन परारथ मान।
खड्ग चलै ज्यों समर में, उपादान सो जान ॥१९॥

द्वितीय लक्षणलक्षणा

औरहिं थापन निज तजन, लच्छनलछना जान।
ज्यौं गंगा में घोष तहँ, तीर अरथ पहचान ॥२०॥

---

१४. देइ—'क' में देह।
१५. दुविध=दो प्रकार की।
१६ गाड़ी=वाहन, स्थिर। नारंगी=एक फल, जो रंगी न हो, रंग-हीन।
२०. जहँ='ख'—हैं।

सारोपा और साध्यवसाना

जहाँ काहु सम्बन्ध सों, कहैं दुहूँ इक आनि।
वृष्टि अन्न ही है सु लखि, अन्न महीजे जानि ॥२१॥

साध्यवसाना

कुकभा छंद

ज्यों कारन कारिज संबंध, वृष्टि अन्न यह जानौं।
कहूँ होत तादर्थ भाव तें, जाचक वस्त्र वखानौं ॥२२॥

कहुँ अबयव सबन्धु सुगज पट, स्वामि भाव नृप दासैं।
विंदमान जौ सब्द सु लोपै, तऊ अर्थ वह मासै ॥२३॥

गौणी भेद

दोहा

गुण उपमान लीज्यें कहैं, दोऊ के इक नाम।
कमल नयन पट मद्धि सौं, विधु प्रकास अभिराम ॥२४॥

व्यंजक शब्द

विंजक सव्द वहीं जहाँ, ब्रित्त बिंजना होइ।
ता करि अर्थ कढ़ै जुतिहि बिंग्य कहत सब कोइ ॥२५॥

जहँ पद के सम्बन्ध तैं, भास अनेकन अर्थ।
चतुरन कौं सो बिंजना, तिहि धुनि काबि समर्थ ॥२६॥

उत्तम बिंग प्रधान तहँ, गौन सु मद्धिम जान।
रहित बिंग तहँ अधम कह, काबि त्रविध गत मान ॥२७॥

---

२४. ज्यो—'ख' जो। अरत्थ—'क' अरथ।
२६. कावि—काव्य।
२७. कावि=काव्य

व्यंग-प्रधान उत्तम काव्य

जौ सुगंधि प्रिय तौउ किन, लीजै अलि नँद-नंद।
आजु तरुनि के बाग में, तजत कमल मकरंद ॥२८॥

वस्तु-अलंकृति रसनि में, बिंग तीनि थल होय।
तहाँ पद्मिनी आँसु द्रिग, उद्दीपन क्रम जोय ॥२९॥

गौणी व्यंग्य मध्यम काव्य

स्तुति मिस निंदा जानहू, कहत जु अहित प्रसंग।
धनि धनि सखि मोहित भई, नख रद छत जुत अंग ॥३०॥

अधम काव्य

पद्धरि

अधम काव्य है रहित बिंग।
जिहि अंग संग दुति ढंग रंग ॥३१॥

अर्थ-भेद

दोहा

वाचि लच्छि अरु बिंग ये, तीन भाँति के अर्थ।
कहे सु औरै विध सुनौ, ग्रन्थांतर न समर्थ ॥३२॥

तातपर्य इक अर्थ है, चौथौ ग्रन्थन माहिं।
रितवर नत ज्यों बृखन के, नृतत पंखि सरसाहिं ॥३३॥

ग्रन्थान्तर

स्वतै संभवी अरथ इक, अपतैं संभव होय।
कवि प्रोढ़ौकित सिद्ध इक, कवि कृत उक्तज कोय ॥३४॥

कुकभा छन्द

कबि कल्पित व कृत प्रौढ़ो कित, सिद्ध तीसरै जानौ।
अन्य काव्य में अरथ अन्य, कृत कढै अधिक रस मानौ ॥३५॥

---

२८. अलि=सखी, भ्रमर। तरुनि=वृक्षों, तरुणी।
३०. यह छंद अलंकारमाला में भी है।

उदाहरण

दोहा

चली चाँदनी में तरुनि, मिली जोति मैं जोति।
इती बीच की जोन्ह कछु, ओपी सी दुति होति ।।३५।।

दोष-वर्णन

छप्पय

तजहु त्रविधि असलील, जुगुपसा, व्रीड़ अमंगल।
श्रुतिकटु, दुःसंधान, हीन-रस ग्राम नहिन भल।
पंग मृतक संदिग्ध, क्लिष्ट पुनरुक्ति निरर्थक।
अधिक न्यून क्रम-हीन, विरथ जति-भग, अनर्थक।
अप्रयोक्त विरोधी देस पथ, समय लोक आगम बरन।
तजि शब्द चिन्ह अरु दोस जे, सबै काबि सोभा हरन ।।३७।।

अश्लील-लक्षण

ग्लानि लाज आवत कहत, असुभ होय असलील।
पाद लिंग वा मनुज के, हते भाग बढ़ सील ।।३८।।

श्रुतिकटु-दुःसंधान-हीन-रस-लक्षण

श्रुति कटु करन सुहाय नहिं, अनुकूलैं प्रतिकूल।
दुसंधान सो हीन रस, जात रहै रस मूल ।।३९।।

उदाहरण

चलौ नहीं किह हेत मन तऊ न बोलि गँवार।
तजि ऐसे बचनहिं तजत, तजै न तो पर भार ।।४०।।

ग्राम-पंग-दोष-लक्षण

ग्राम शब्द ग्रामीन ज्यों, लखि तिय सुन्दर गाल।
छंद-भंग सो पंग यह, भरतार सेवत वाल ।।४१।।

---

३७. अनर्थक='क'—आमर्थक।

३८. वड़='क'—वभ्फ।

३९. करन=कर्ण, कान।

मृतक-संदिग्ध-लक्षण

अरथ हीन सो मृतक वह, दील बील धल धाल।
सो संदिग्ध औरहि अरथ, चलौ निहारैं बाल ।।४२।।

क्लिष्ट-पुनरुक्ति-दोष-लक्षण

क्लिष्ट अर्थ सो क्लिष्ट विध, नाम अर्थ सुत देह।
सो पुनरुक्ति द्वै वा अरथ, चलि तिय पिय गृह गेह ।।४३।।

निरर्थक-दोष-लक्षण

चरनन के पूरन अरथ, बरन जहाँ निरधार।
सु निरर्थक पिय देखिये, वह आई अवलार ।।४४।।

अधिक-दोष-लक्षण

बिनुहि प्रयोजन पन्न जहाँ, पद सो अधिक निहार।
तुव मुख चंद सरोज अलि, आवत यह निरधार ।।४५।।

न्यून-दोष-लक्षण

जहँ चहियत कछु पद प्रगट, न्यून दोस तिह नाम।
तुहूं देखि सखि नीच वभु, दहत तियहिं बिन काम ।।४६।।

क्रम-हीन व्यर्थ-यति-भंग-लक्षण
सोरठा

क्रम न गनैं क्रम हीन, बिरथ सु पूरब परि अमल।
जति भंग अरु मैं लीन, और चरन के वरन जहँ ।।४७।।

उदाहरण

कहा वस्तु सुरमुनि उरग, देह बताय सु ओक।
जानत हैं हम हू सुधरनी पताल दिव लोक ।।४८।।

---

४३. गेह = 'क' ग्रेह।
४७. इस छंद की क्रमसंख्या ५७ है तथा आगे भी इसी क्रम का अनुसरण किया गया हैं।

असमर्थ-अप्रयुक्त-दोष

सु असमर्थ जहँ अर्थ बल, हनन कियो यह नाह।
अप्रयुक्त नहिं प्रयोग में, वाह अदेखै दाह ।।४९।।

विरोध-लक्षण

मरुत जलाशय वरनियै, चल चख चलदल तूल।
कंज निसापति वृत्र सचि, द्विज सेवक दुख मूल ।।५०।।

अनुसरण

श्वेत दीप गुन तात कौं, दंडन करि सिख देहु।
तिय हरषत बरसत जलद, तजि विरोध बुध गेहु ।।५१।।

अनुचितार्थ-लक्षण

विरस भोग में सोगपद, नीरस सब छल प्रीति।
प्रतिकूलाषिर रस बिरुध, बरनन दुष्क्रम रीति ।।५२।।

उदाहरण

मिलि तिय सूतक न्हान पर, सठ कुलदा इह छद्म।
अति रति क्रिय पति यहाँ लक्षण दै पद्म ।।५३।।

प्रश्न

कहौ हीन रस अरु बिरस, नीरस में कह भेद?

उत्तर

तहँ रस सत द्वै विरुद्ध रस, बिनु रस लक्खन खेद ।।५४।।

विपरीत क्रम

कह्यो चहत विपरीत सो, होय विरुध क्रत गाय।
दीनो सुख चह दुख दियो ऐसो नृपति सुभाय ।।५५।।

दोष तीन थल होत हैं सब्द अरथ रस माहिं।
समझि लीजिए बुद्धि वल, जहँ जैसो सर साहि ।।५६।।

---

५०. देश—विरोध, पथ-विरोध, लोक-विरोध, समय विरोध आदि 'विरोध' के भेद हैं।

५३. 'क' व 'ख' 'ग' में यह छंद अपूर्ण है। 'ग' में इसकी छंद संख्या ५० है।

उदाहरण

कटु करणानिक शब्द के, विरथ अरथ अरु जानि।
विरसा दिक रस दोष हैं, जानत कवि गुन-खानि ।।५७।।

अगनिग जो तिहिं भेद कौं, कहत कवित में आन।
षटषट आखट रूप गन, द्वै द्वै तहँ पहचान ।।५८।।

दोष-अंकुश

विरथ कथा अरु सूरति मधि, अरि अति गुन असलील।
ग्राम सुहासी श्लेष में, जो निरथक गुन शील ।।५९।।

गुण-वर्णन

(माधुर्य-गुण)

सो माधुर्य सिंगार अरु, वरन मधुर सुख स्रोत।
कमल नयन के वयन सुनि, मयन अमन हिय होत ।।६०।।

(ओज-गुण)

औज रुद्र अरु वीर में, ब्रत संजोगी वर्न।
देखि खगारिपु भग्ग गै, डगा सर्व सुख कर्न ।।६१।।

(प्रसाद-गुण)

आभासै सुनतहिं अरथ, सो प्रसाद गुन गाय।
रे मन जो चाहत भलौ, तौ हरि सों चित लाय ।।६२।।

नवरस-वर्णन

ब्रत विचार कहैं सुनौ, छंद-सार लखि मित्त।
नव रस कछु संछैपतैं, कहत सुनहु दै चित्त ।।६३।।

नव रस आदि सिंगार रस, हास्य करुन रुद्र वीर।
भय विभत्स अद्भुत वरनि, सांत परम गुन धीर ।।६४।।

---

५८. आन=अन्य। आखर=अक्षर।

६४. यह दोहा 'रसरत्न' में क्रम-संख्या २ पर है रस = 'रसरत्न' में 'पुनि'।

रस-देवता का नाम

कृष्न देव सिंगार के, स्याम रंग उद्योत।
प्रथम देव सित हास्य रस, यम करुना सु कपोत ।।६५।।

रुद्र अरुन तहँ रुद्र सुत, इन्द्र वीर विध चारु।
दया दान अरु धर्म रिन, हेम बरन निरधारु ।।६६।।

अस्त भयानक काल सुर, बीभछ नील बखान।
महा काल सुर अद्भुत सु, पीत मदन सुर जान ।।६७।।

सांत सम त्थाई सु जिहिं, चन्द्र वरन हरि देव।
ऐसे 'सुरति' सुकवि कछु, कहे रसन के भेव ।।६८।।

रस-लक्षण

जहँ पोषैं थाईन कौं, मिलि विभाव अनुभाव।
विभिचारी तहँ रस प्रगट, आनँद कथा प्रभाव ।।६९।।

भगवत वरन सरूप रस, आनँदमय इमि जानि।
तातैं करुनादिकनहू मद्धि हौत सुभ खानि ।।७०।।

थाई नव रस रति प्रथम, हाँसी सोकरु क्रोध।
उत्साहरु भय ग्लानि कहूँ, विसमय सम करि सोध ।।७१।।

आदि अंत ठहराव जो, रस कै थाई भाव।
आलंवन उद्दीपनौ, मै विधि कहत विभाव ।।७२।।

आलम्बन अवलंवई जिन जिन कौं रस आय।
जिनतैं दीपति ह्वै बढ़ै, ते उद्दीप गनाय ।।७३।।

अन्तर थाई भाव जिह, वोधक है अनुभाव।
विभिचारी रस संचरै, निरवेदादिक नाँव ।।७४।।

---

७२. इस छंद के प्रथम दो चरण और 'रसरत्न' के छंद संख्या २९ के प्रथम दो चरण समान हैं।

७५. यह छंद रसरत्न में संख्या २८ पर है। सब रस अरु='रसरत्न' में "रति पति रस"।

विभावादि वर्णन

(रसरतनै कवित)

मन को विकार भाव, वोधक सो अनुभाव
हेतुरस है विभाव, द्वै विधि सो गहिये।

आलंवन जिन्हैं अवलंवैं सव रस अरु
दीपत करै जो सोई उद्दीपन कहिए ॥

स्तंभन स्वेद सुरभंग, कंपन विवर्ण अश्रु
रौमंच प्रलय विधि सात्विक सो लहिये ॥

रति, हाँसी, सोक, क्रोध, उछाहरु भय निन्दा,
विस्मै समताई भाव नीकै जानि रहियै ॥७५॥

विभिचारि भाव वर्णन

(कवित्त)

निर्वेद, ग्लानि, सका, गरव, अमर्ष, चिंता,
मो, दीनता, असूया, इसमृति, मु जानियै ॥

मद श्रम, उनमाद, आलस, हरष, व्रीड़ा,
जड़ता, अवेग, ध्रति, मति, भय, मानियै ।

आकृति–गुपति, चपलता औ अपसमार
उत्कंठा निद्रा औ सुपन वोध ठानियै ।

उग्रता विपाद व्याधि वितरकं मृत्यु जुत
ऐई सव विभिचारी भाव कै वखानियै ॥७६॥

दोहा

कहु थाई विभिचारिता. ज्योंह सरस सिगार
रस वीरह उच्छाह अरु, विसमै वहु रसुदार ॥७७॥

---

७६. यह छंद 'रसरत्न' में संख्या ३० पर है।

शृंगार रस-लक्षण

सूरति संतत जहं रहै, रति कौ पूरन अंग।
ताहि कहत सिंगार रस, केवल मदन प्रसंग ।।७८।।

सो सिंगार रस भाँति द्वै कहे संजोग-वियोग
अंतरँग बहुरँग होत जहँ प्रछन प्रकास प्रयोग ।।७९।।

तीय अरु नायक परसपर, आलंवन रस आहि।
राग रूप राकेस रुद, थल उदीप इत्यादि ।।८०।।

लोचन मुख अंगन अतनु, ये अनुभाव विचारि।
ब्रीडा हरस संजोग बिय, श्रम संकादि संचारि ।।८१।।

शृंगार रस का उदाहरण

पथिक निहारि पय पाली रूप वारे दृग,
उरध कै वार पान करै लखै वन कौं।

विरल सुधार करि अँगुरिन चारि पल
गति हनवार भावै अँतरन छिन कौं ।।

त्योंही वह नारि प्रीति रीति हिय धारि छाँड़ै
तनु तनु धार देखौ प्रेम दहुवन कौं ।।

'सूरति' विचारि मन कीन्हों निरधार यह
रसहै सिंगार औ सिगार बरनन कौं ।।८२।।

आलंवन इहँ तिय पथिक परस पर
उद्दीपन अँगुरी विरल तनु धार है।

वदन पैं प्रीति झलकति सोइ अनुभाव
स्वेद कपनाई तेई श्वातक विचार है।

---

७८. जहँ रहै='रसरत्न' में 'रहत है'। यह छंद रसरत्न में संख्या ३ पर है।

८२. कीन्हों='क' में कीधौ।

संका उतकंठा ब्रीड़ा धृति औ हरष आदि,
जानि विभिचारी होत जात सु अपार है ।

ऐसो सब मिलि रति थाई संग सोहै तातैं
पूरन सिंगार जामैं सब सुख सार है ॥८३॥

दोहा

अरु सिंगार रस अंगजै, हाव भाव रस भेद
सबै कहे रस रत्न में समझहु तहँ हरखेद ॥८४॥

हास्य रस-वर्णन

हास्य विदूषक अंग तजु, आलंबन उद्दीप
दृग सँकोच अनुभाव अरु नींद सँचार समीप ॥८५॥

उदाहरण

जल थल भ्रम पट उचकरत रहे सबै मुसकाय ।
जानि फटक थल जल परत, हँसे सबै नृपराय ॥८६॥

हास्य-भेद

इसमित, मुसकन, मृदु हँसन, विहँसन धुनि कछु होय ।
दृग चल वहु धुनि उपहँसन, दृग जल सद अप सोय ॥८७॥

करताली सद जल वहत, भेद न जन अति जान ।
उत्तम मद्धिम अधम कैं, द्वै-द्वै हास वखान ॥८८॥

करुण रस

इष्ट नास तहँ करुन रस, है अनिष्ट जिह दाय ।
आस नास मधु करन तौ, विप्रलम्भ रति थाय ॥८९॥

जौलों रति वानी नहीं, तौलौं करुन ससोक ।
रति की वानी भयैं सु पुनि विप्रलम्भ रति ओक ॥९०॥

करन अलंवन इष्ट गत, उद्दीपन है कृत्त ।
रुदितादिक अनुभाव हैं, मोह सँचारी चित्त ॥९१॥

उदाहरण

कौन सिखै है नृपन कौं तुम विन मति अवदात ।
सकल शास्त्र विद्यानि की, बात जात मट्टतात ।।६२।।

चहुंर ओर लखि द्रोपदी, टेरौ है जदुराज ।
रिपु समाज पट साज की, लाज राखिये आज ।।६२।।

रौद्र

आलंबन मधि रुद्र अरि, चित्त उदीपन धारि ।
भ्रूभंगह अनुभाव है, उग्रतादि संचारि ।।६४।।

उदाहरण

अरुन कहा यह पन करत, अरुनि पछत रिपु मार ।
अरुन करौं धरनी समर, अरि नर दल अपगार ।।६५।।

वीर रस

बीरालंब जु जीतवे, जीत चित्त उद्दीप ।
उदीप अनुभावै सुमत, ध्रत सँचार समीप ।।६६।।

उदाहरण

दीन हेत धन देत व्रत, लेत चढ़त रनखेत ।
मुद समेत कपकेत हम, निरष्यो तेज निकेत ।।६७।।

भयानक रस

भय आलंबन हेत भय, कृत उद्दीपन धारि ।
अनुभावै सुर-भंग अरु, मुरछादिक सँचार ।।६८।।

उदाहरण

बैठो हो निज भवन मे, मित्रन रमनि समेत ।
सेत वँध्यो यह सुनत ही, भयो रावन्ह श्वेत ।।६९।।

---

६५. अरु='क' में 'अरि' । अपकार—'क' में अपगार ।
६९. मित्रन=मंत्रियों ।

वीभत्स रस

आलंबन वीभत्य मे विगध उदीप कमादि ।
ठीवनादि अनुभाव हैं, सँचारी मोहादि ॥१००॥

उदाहरण

खेंचत हो शृंगार जहँ, असत माँस अरु मेद ।
देखि समर थल धरम सुत, कीनौं चित्त अति खेद ॥१०१॥

अद्भुत रस

चित्त अलंबन अलौकिकै, वस्तु दीप गुन धार ।
दृग विकास अनुभाव बहु, वितरकादि संचारि ॥१०२॥

उदाहरण

श्री वृन्दावन में रच्यौ, अद्भुत चरित रसाल ।
कोटि तियन सँग कर गहैं, नरतन मदन गुपाल ॥१०३॥

शान्त रस भेद

हरि ही हित यह सांति रस, और जगत के जान ।
याही तैं कहुँ आठ रस, ग्रन्थन कहे वखान ॥१०४॥

पाँच भाँति के नवम रस, सांति प्रीति प्रेयान ।
वछ्ल मधुर रस जानिये, सुद्ध सांत मधि ग्यान ॥१०५॥

औ रस भक्ति-प्रधान हैं, सगुन रूप में गाय ।
थाई प्रीति सु सम लियै, प्रीति सांति मय पाय ॥१०६॥

सखा भाव रति थिर जहाँ, सु वह सांति प्रेयान ।
सो द्वै विधि यक दास मन, कहैं सखा हर जान ॥१०७॥

अरिजनादि तौ एक सम, जानत जहँ व्रज वाल ।
जहाँ पुत्र रति भाव थिर, वत्सलताहि रसाल ॥१०८॥

मधुरी रति थाई जहाँ, मधुरस ब्रजतिय माँहि।
सुद्ध सांति भगवान में, और ठौर ठौर कछु नांहि ॥१०९॥

प्रीति सखी वत्सल जु ये, हरि ही में रस रूप।
और ठौर है भाव जहँ सम थाई न अनूप ॥११०॥

मधुर जु रस हर ही विषै, और ठौर शृंगार।
यहाँ न यह मनमत्थ कहूँ, करै अंग संचार ।१११॥

जगत सु विषर्या नरन कौं, सदगति बरनी नांहि।
ब्रज–बालनि के गुन रटैं, तेऊ सदगति मांहि ॥१२॥

यातैं यह रस और है, आपह मनमथ रूप।
ब्रज-लीला अद्‌भुत रची, मदन गुपाल अनूप ॥११३॥

शुद्ध शांत रस का उदाहरण

सदा सुद्ध निरलिप्त तूँ, अज अविनासी आप।
भ्रमतैं यह जग रज्जु ज्यों, तोमैं पुन्न न पाप ॥११४॥

शांत रस का उदाहरण

मोर-मुकट सिर पर धरै, गर बनमाल रसाल।
पीत बसन म्रदु हँसन सौं, बसो विहारी लाल ॥११५॥

प्रेम शास्त्र

दक्खिन दृग फुरकंत भुज, होत सगुन अभिराम।
मोहि आजु मिलि हैं तरुन, सखा सुदामा नाम ॥११६॥

दूती प्रेम

कहत सु वल श्रीकृष्ण सौं, चले कितै करि चाव।
अपनौ दाव लयौ अवै, देहु हमारौ दाव ॥११७॥

---

११५ गर=गले में। इस दोहे में कृष्ण के लिए विहारीलाल शब्द का प्रयोग है, किन्तु कवि विहारीलाल के दोहे का भाव भी इसमें रूपान्तरित है।

वत्सल शांत

लयो गोद में मोद सौं, सुत सुन्दर सुख कंद।
बाहर जात न दीठ डर, आँगन डोलत नंद ॥११८॥

मधुर शांत

लखि सखि हरि की माधुरी, कहत न बनत अनूप।
कोटि कोटि मनमथन कौ, वारि डारिये रूप ॥११९॥

सब रस सामाजिक सुखद, नाटक हू सुखदाय।
रुद्र करुन वीभत्स में, काव्य और नट भाय ॥१२०॥

अलंकार माला विषै, अलंकार लखि लेहु।
यह विधि कविता रचहु तिय, कृष्ण गुणन चित देहु ॥१२१॥

रीति वर्णन

जहाँ धरत माधुर्य में, विंजक रचना लाय।
बैदरभी वह रीति अरु, उपनागरिका भाय ॥१२२॥

गौड़ी परुषा ओज में, विंजक रचन सवाद।
पंचाली अरु कोमला, विंजक रचन प्रमाद ॥१२३॥

ग्रन्थान्तर

व्रतनुप्रास वरनन मधुर, ओज प्रसादज वर्न।
बैदर्भी सो आदि ये, रीति जान सुख कर्न ॥१२४॥

कहै कोमला वृत्ति ये, वृत्त मधुर गुन होय।
ग्रंथांतर के भेद ये, सबै जानिये सोय ॥१२५॥

त्रिविधि काव्य की रीति ये ग्रन्थनि कही वखानि।
वहु वरनन वरनन जहाँ। काव्य सुलच्छन जान ॥१२६॥

---

१२१. तिय=पति-पत्नि सम्वाद के कारण तिय का सम्बोधन है।
१२७. रसाभास के बाद शब्द छूटे हुए हैं। "तहँ आय" पाठ जोड़ा गया है।

अनुचित गति जेहँ रसनि की, रसाभास तहँ आय ।
अब सुनिये शृंगार में, रसाभास जिहि भाय ।।१२७।।

एक ओर की प्रीत अरु, तिय अनेक नर प्रीति ।
तरजिक रति को बरणिबो, अधम पुंज रति रीति ।।१२८।।

तिय अनेक नर प्रीति ज्यों, यह लक्खिन यह मांहि ।
तौ परकिय दछ धृष्ट सठ, रसाभा ह्वै जाहि ।।१२९।।

उत्तर

परकीया सब पुरन रस, कुलटा यक आभास ।
दक्खिन सुख सम प्रीति तौ रसाभास नहिं तास ।।१३०।।

जहाँ धृष्ट सठ निज तियनि, परकिय यक हित होय ।
तहँ पूरन रस बहुत तौ, रसाभास तक जोय ।।१३१।।

बालापन तैं द्दग बलैं, इक ही सौं रस-रीति ।
तिह सामान्या तरुन में, नहिं अभ्यास परतीति ।।१३२।।

उत्तम वृत अपहँसत अरु, उत्तम बुध उच्छाह ।
चोर बधन में सोक इमि, रसाभास तकि नाह ।।१३३।।

ऐसे नायक नायका, उनहू के अभ्यास ।
जहँ इन की सी रीति रचि, ओरहु कहें प्रकास ।।१३४।।

यथा

सुमन स भूषन फल उरज, अति म्रदुतन हित केलि ।
अँग अंगन तरु तरुन सैं, छपटानीं तिय बेलि ।।१३५।।

भाव ध्वनि-वर्णन

जहँ विभिचारी मुख्य अरु, देवतादि रति जान ।
सुहै भाव सुत नेह तहँ, रसहू कहै वखान ।।१३६।।

व्यभिचारी मुख्य भाव

वैरु धरै आनँद न जहँ, कैसैं मिलिहै मीत ।
संका यहै प्रधान है, यातें भाव प्रतीत ।।१३७।।

भावाभास-वर्णन

विभिचारी आदिक जहाँ, अनुचित भावाभास ।
दौन भाव असमर्थ सौं, गनिका लाज प्रकास ।।१३८।।

भावोदय

कह्यौ भाव जो प्रथम सो, निरविकल्पादित आय ।
होय अचानक यह जहाँ भावोदय सु मनाय ।।१३९।।

भाव उदय बिनु लह हरष, पुनि विषाद लह चोर ।
भाव सांति यह गति प्रगट, उदाहरन नहिं थोर ।।१४०।।

भाव-संधि वर्णन

भाव विरोधी इक समै, भाव शुद्ध उर धारि ।
कैसें यह देषति पियहिं, हरष भीति जुत नारि ।।१४१।।

भावशबलता-वर्णन

अवरोधी यह भाव जहँ, भाव सबल गुन धाम ।
पिय आये बोली नहीं, कहा कियो यह काम ।।१४२।।

चिंता संका दीनता, उतकंठा निरबेद ।
समृति विषाद तें जानही, भावशवल कौ भेद ।।१४३।।

उदाहरण मतिवान कौ, फुरत लखिन नहिं देख ।
समझहु काव्य सिधांत यह, करहु काव्य गुन लेख ।।१४४।।

शब्द अरथ तनु धातु मय, जीव सरस आनंद ।
अलंकार सो कंत है, अंग अंग प्रति छंद ।।१४५।।

गुन जो सुरता आदि गुन, रीति चलन सुन धीर।
दोष भंगु छंदादि विनु, जानौ काव्य सरीर ॥१४६॥

जलत दीप परकास कौं, सुभ सुब्रह्म अवतार।
सत्रहसै अठ्ठानवै, फागुन सुदि बुघवार ॥१४७॥

सुरति सुकवि सुनौ यहु फुरं जु कविता रीति।
तौ प्रभु गुन ही बरनियै, जौ हिय सब सुख प्रीति ॥१४८॥

(राजस्थान राज्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित प्रति की पुष्पिका—) "इति श्री सूरति मिश्र काव्य-सिद्धान्त सम्पूर्णम् ॥

श्रीरस्तु। पठनार्थं दधवाड़िया कँवरजी श्री सावलदास जी। जुठियारा रामदानजो लालस री पुस्तक सूं वाप जी श्री कनीराम जी लिखी तिण स्यातसुं मे ग्रन्थ लिखा गया।"

———

'ख' प्रति की पुष्पिका: एती श्री काव्य सिद्धान्त ग्रन्थ कवि सूरति मिश्र कृत सम्पूर्ण। लीखणाध पठणारथ राव जी श्री वखतार सींग जी कँवर मादोसींग जी लीखणार्थ चरंजीव महतापसींग सलुमर नग्र मद्ये। १६३२ वसाख वुद ५ गुरे परत जोधपुर रा राव वागजी रो भतीजो जीवनराज जी री पृसत्तगसु।

'ग' की पुष्पिका—
इति श्री मूरति मिश्र कृत काव्य सिद्धान्त सम्पूर्णं। श्रीरस्तु। श्री ॥ संवत् १६१३ रा कार्तिक कृष्ण त्रयोदश्यां रविवारे लिपीकृतं। हरीराम व्यास जोधपुर मध्ये। श्रीशुभं भवतु ॥

कामधेनु कवित्त

कामधेनु कवित्त

दोहा

घन वपु तड़ि पटु दृग, सीस चंद्रिका मोर।
लाल लाल वनमाल उर, जय जय नन्दकिसोर ।।१।।

अथ कामधेनुकवित्त कौ लच्छन—

दोहा

देत अनेक मनोरथनि, जैसैं सुरगौ एक।
तैसैं एक कवित्त तैं, लहियै छंद अनेक ।।२।।

यामें छंद अनंत हैं, सबहि कवित्त सुभाइ।
तातैं सूरति कविन हित, कीयौ यहै उपाइ ।।३।।

कामधेनु पोथी रची, छंदनि काढ़ि बनाइ।
जासों भेद कवित्त कौ, सब पै समुझ्यो जाइ ।।४।।

कही जु पूरब कोविदनि, है याकी यह रीति।
जहाँ तहाँ तैं बाँचियै, छंद-काज धरि प्रीति ।।५।।

---

१. घन वपु=बादल के समान जिनका शरीर है। तड़ि पटु=बिजली जैसा पीला वस्त्र। लाल=लाल रंग, लाल=कृष्ण।
२. सुरगौ=कामधेनु।
३. कविन-हित=कवियों के लिए। इस छंद से स्पष्ट है कि 'कामधेनुकवित्त पुस्तक की रचना कवियों को शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई है, मात्र चमत्कार के लिए नहीं।

'सूरति' चित्रित छंद में, इतने दोष न मानि।
जाति भंग पुनरुक्ति पुनि, बवजयरल इक बानि ।।६।।
दीरघ लघु कै बाँचियै यहै काव्य की रीति।
कामधेनु के छंद अब, कहौं सुनौ धरि प्रीति ।।७।।

अथ कामधेनु कवित्त कौ छंद स्वरूप लिख्यो हैं। कवित्त घनाच्छरी छंद अच्छर ३१ में सब भाँति के अनंत निकसत हैं याकौ स्वरूप लिख्यते ।।

कामधेनु के छंद लिख्यते

दोहा

स्याँम भजौ रागें तजौ, लहौ छंद की रीति।
'सूरति' सब सुख पाइहैं, करि हरि पद सौं प्रीति ।।८।।

आदि अंत लौं छाड़ि गहिं, बरन एक के भेद।
'सूरति' दियौ बताइ मग, लहौ छंद निःखेद ।।९।।

कामधेनु–कवित्त

श्रीकृष्ण श्री धरापते अमर श्री बंसीधरे राघवे सूरति लाइ ररौ मति धारियै।
श्री गोविंद रमापते जदुपते स्यामा बरे वामने उरति गाइ पलौ मति टारियै।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापते यादवे जियहि आनि भलौ सुविचारियै।
श्री गोपाल कृपालये ब्रजपते राधापते माधवे प्रभुहि मानि पलौं न बिसारियै ।।

शार्दूल छंद

×

(आदि १९ अंत १२)

श्री कृष्ण श्री धरापते अमर श्री बंशीधरे राघवे।
श्री गोविंद रमापते जदुपते स्यामा वरे वामने।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापते जादवे।
श्री गोपाल कृपालये ब्रजपते राधापते माधवे।१।

---

६. जाति=जति, यति।
कामधेनु कवित्त—यही मूल कामधेनु छंद है, भिन्न-भिन्न क्रमों से लिए गए जिसके शब्दों से अनेक छंद बन जाते हैं।

१. मूल कामधेनु-कवित्त के आरम्भिक ११ अक्षर लेकर इस छंद का उदाहरण बना है और उसी में उसका लक्षण भी निहित है। अन्त के १२ अक्षरों का त्याग लक्षित है।

द्रुतविलंबित छंद

×

(आदि १९ अंत १२)

सुरति लाइ ररौ मति धारियै ।
उरति गाइ पलौ मति टारियै ।
जियहि आनि भलौ सुविचारियै ।
प्रभुहि मानि पलौ न बिसारियै ।२।

त्रिभंगी छंद

× × ×

(आ १६। ३। २। १।४।५ अं)

श्रीकृष्ण श्रीधरापते अमर श्रीबंसीधर सुर लाइ ररौ ।
श्री गोविंद रमापते जदुपते स्यामा बर उर गाइ पलौ ।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापति जिय आनि भलौ ।
श्री गोपाल कृपालए ब्रजपते राधापति प्रभु मानि पलौ ।

गीतक छंद

× × ×

(आ १। ७।८। ३।२।१ ।६)

श्री अमर श्री बंसी धरे सुर लाइ ररौ मति धरियै ।
श्री जदुपते स्यामावरे उर गाइ पलौ मति टारियै ।
श्री भवपते सीतापते जिय आनि भलौ सुविचारियै ।
श्री ब्रजपते राधापते प्रभु मानि पलौ न बिसारियै ।४।

---

२. इस छंद के लिए अन्तिम १२ अक्षर लिए गये हैं ।

छप्पय छन्द

× × ×

(आ १६ आ १६।२। १।८।१)

श्री कृष्ण श्री धरापते अमर श्री वंसीधर।
श्री गोविन्द रमापते जदुपते स्यामावर।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापति।
श्री गोपाल कृपालये व्रजपते राधापति।

सुर लाइ ररौ मति धारि, उर गाइ पलौ मति टारि।
जिय आनि भलौ सुविचारि, प्रभु मानि पलौ न विसारि।५।

अडिल्ल छंद

× × ×

(आ १२।४।३ ।२।१ ।६)

वंसीधर सुर लाइ ररौ मति धारियै।
स्यामावर उर गाइ पलौ मति टारियै।
सीतापति जिय आनि भलौ सुविचारियै।
राधापति प्रभु मानि पलौ न विसारियै।६।

मोदक छंद

+ × ×

(आ ४ ।४।१४।८।१)

धरापति लाइ ररौ मति धारि।
रमापति गाइ पलौ मति टारि।
रघूपपि आनि भलौ सुविचारि।
कृपालय मानि पलौ न विसारि।

---

५. इस छंद में प्रथम चार [पंक्तियों में १६ वर्ण लिये गये हैं। अन्तिम दो पंक्तियों के चार चरणों में शेष क्रम अपनाया गया है।

पद्धड़ी छंद

× ×
(श्रा २।१३।१०।७)

श्री धरे राघवे सूरति लाइ।
श्री वरे वामने नति गाइ।
श्री पते जादवे जियहि आनि।

चौपाई छंद

× × ×
(श्रा ४ ।४।३ ।५।१५)

धरापते श्री बंसीधरे।
रमापते ते स्यामावरे।
रघूपते ते सीपापने।
कृपालये ते राधापते।९।

मालिनी छंद

× × ×
(४।३। १।११।११।१)

धरप अमर श्री बंसीधरे राघवे ये।
रमुप जदुपते स्यामावरे वामने ये।
रघुप जदुपते सीतापते जादवे ये।
कृपल बृजपते राधापते माधवे ये।१०।

ककुभा छंद

× × ×
(४।८। ४।६। २।७)

धरापते अमरं श्री राघव सुरति ररौ मति धारियैं।
रमापते जदुपते वामने उरति पलौ मति टारियैं।
रघूपते भवपते जादवे जियहि भलौ सुविचारियैं।
कृपालये बृजपते माधवे प्रभुहि पलौ न बिसारियैं।११।

इन्द्रवज्रा छंद

× × ×

(१।३। ८।७।११।१)

कृष्ण श्रि बंसीधर राघवे ये।
गौविन्द स्यामावर वामने ये।
बाराह सीतापति जादवे ये।
गोपाल राधापति माधवे ये।१२।

तोमर छंद

× × × ×

(८।४। ४।३। ३।२।७)

अमर श्री राघव लाइ।
जादुपते वामन गाइ।
भवपते जादव आनि।
बृजपते माधव मानि।१३।

दोधक छंद

× ×

(१६।३।३।९)

राघप लाइ ररौ मति धारिय।
वामन गाइ पलौ मति टारिय।
जादअ आनि भलौ सुविचारिय।
माधव मानि पलौ न बिसारिय।१४।

उपेन्द्रवज्रा छंद

× × ×
(४।३। ५।७।११।१)

धराप वंसीधर राघवे ये ।
रमाप स्यामावर वामने ये ।
रघूप सीतापति जादवे ये ।
कृपाल राधापति माधवे ये ।१५।

चंचरी छंद

× × × × ×
(१। ३।३।५ ।४।३ ।२।१ ।२। १।६)

श्रीधराप वंसीधरे सुप लाइ लौ मति धारियैं ।
श्री रमाप स्यामावरे उर गाइ लौं मति टारियैं ।
श्री रघूप सीतापते जिय आनि लौ सुविचारियैं ।
श्री कृपाल राधापते प्रभु मानि लौं न विसारियैं ।१६।

भुजंग प्रयात छंद

× ×
(४।८ ।७।११।१)

श्री कृष्ण श्री वंसीधरे राघवे ये ।
श्री गोविंद स्यामांवरे वामने ये ।
श्री वाराह सीतापते जादवे ये ।
श्री गोपाल राधापते माधवे ये ।१७।

मधुभार छंद

× × ×
(१।३।१८।२।७)

कृष्ण श्रि लाइ ।
गोविन्द गाइ ।
वाराह आंनि ।
गोपाल मानि ।१८।

सामानिका छंद

× × ×

(१। ३।३। ६।३।१२)

श्री धराप राघवे।

श्री रमाप बामने।

श्री रघूप जादवे।

श्री कृपाल माघवे।१६।

तोटक छंद

× × × ×

(१। ३।४।८ ।३।३ ।४। ५)

श्री धरापति राघव लाइ ररौ।

श्री रनापति वामन गाइ परौ।

श्री रघूपति जादव आँनि भलौ।

श्री कृपालय माधव मांनि पलौ।२०।

मरहट्टा छंद

× × ×

(७ ।१५। २।६। १)

ते अमर श्री वंसीधरे राघवे सुरति ररौ मति धारि।

ते जदुपते स्यामावर वामने उरति पलौ मति टारि।

ते भवपति सीतापते जादवे जियहि भलौ सुबिचारि।

ये वृजपति रावापते माधवे प्रभुहि पलौ न बिसारि।२१।

निसिपालिका छंद

× × × ×
(७।४। ५।३। २।३। २।८)

ते अमर राघवति लाइ मति धारियैं।
ते जदुपती वामनति गाइ मति टारियैं।
ते भवप जादवहि आंनि सुविचारियैं।
ये वृजप माधवहि मांनि न विसारियै।२२।

तुरंगम छंद

× × ×
(४।३। १।४।१८।१)

धरप अमर वे ये।
रमप जदुपते ये।
रघूप भवपते ये।
कृपल वृजपते ये।२३।

कमला छंद

× ×
(१६।३। ४।५)

सुरति मति धारियैं।
उरति मति टारियैं।
जियहि सुविचारियैं।
प्रभुहि न विसारियैं।२४।

पद्धड़िका छंद

× × ×
(७। ४। ५।८।७)

ते अमर राघवे सुरति लाइ।
ते जदुप वामने उरति गाइ।
ते भवप जादवे जियहि आंनि।
ते बृजप माधवे प्रभुहि मांनि।२५।

कुंडलिया छंद

× × ×
(११।११।२।६।१)

श्री बंसीधर राघवे सुरति ररौ मति धारि।
ते स्यामावर वामने उरति पलौ मति टारि॥

उरति पलौ मति टारियेति सीतापति जादव जियहि।
भलौ सुविचारियेत राधापति माधव जियहि॥
भलौ सुविचारि प्रभुहि मानि पलौ न विसर।
श्री कृष्ण श्री धरापते अमर श्री बंसीधर॥२६॥

स्रग्वीनी छंद

(१।५।१।१।११।१२)

श्रीप अमर श्री वंसीवरे राघवे।
श्रीप जदुपते स्यामावरे वामने॥
श्रीप भवपते सीतापते जादवे।
श्रीप वृजपते राधापते माधवे॥२७॥

हरनी छंद

× × ×
(१।१३।५।३।४।५)

श्रीधर राघव लाइ ररौ ।
श्रीबर बामन गाइ परौ ।।
श्रीपति जादव आँनि भलौ ।
श्रीपति माधव माँनि पलौ ।।२८।।

बिलंता छंद

× × × ×
(८।४।२।५।३।२।६।१)

अमर श्रीधर राघव लाहयैं ।
जदुपते बर वामन गाइयैं ।।
भवपते पति जादव आँनियैं ।
वृजपते पति माधव माँनियैं ।।२९।।

संजुता छंद

× × ×
(१।१३।५।३।२।६।१)

श्रीधरे राघव लाइयैं ।
श्रीवरे वामन गाइयैं ।।
श्रीपते जादव आँनियैं ।
श्रीपते माधव माँनियैं ।।३०।।

शृग्वी छंद

× × × ×
(१।५।१।५।७।३।२।६।१)

श्री बंसीधरे राघवे लाइयैं ।
श्रीप स्यामावरे बामनैं गाइयैं ।।
श्रीप सीतापते जादवे आनियैं ।
श्रीज राधापते माधवे मांनियैं ।।३१।।

बसंततिलका छंद

× × × ×
(१।३।३।५।२।५।१।१।१)

कृष्ण श्रिते अमर श्रीधर राघवे ये।
गोविन्द ते जदुपति बर बामने ये।।
बाराह ते भवपते पति जादवे ये।
गोपाल ते बृजपते पति माधवे ये।।३२।।

छंद

× ×
(११।५।१०।५)

ति बंसीधरे मति धारियैं।
ति स्वामाबरे मति टारियैं।।
ति सीतापते सुबिचारियैं।
ति राधापते न बिसारियैं।।३३।।

मोटक छंद

× × ×
(१२।७।३।४।५)

वंसीधर राघव लाइ ररौ।
स्यामाबर वामन गाइ पलौ।।
सीतापति जादव आँनि भलौ।
राधापति माधव मांनि पलौ।।३४।।

हरिलीला छंद

× × × × ×
(१।३।८।७।३।२।१।१।४।१)

कृष्ण श्रि बंसीधर राघव लाइ लौइ ।
गोविन्द स्यामाबर वामन गाय लौय ।।
बाराह सीतापति जादव आंनि लौय ।
गोपाल राधापति माधव मांनि लौय ।।३५।।

चंद्रवर्त्ता छंद

× × × ×
(४।३।५।७।५।२।५)

धराप बंसीधर राघवे ररौ ।
रमाप स्यामाबर बामने परौ ।।
रघूप सीतापति जादवे भलौ ।
कृपाल राधापति माधवे पलौ ।।३६।।

प्रमिता छंद

× ×
(१४।१२।५)

धरि राघवे सुरति लाइ ररौ ।
वर बामने उरति गाइ परौ ।।
पति जादवे जियहि आंनि भलौ ।
पति माधवे प्रभुहि मानि पलौ ।।३७।।

पादाकुलिक छंद

× × × ×
(८।८। ३।२। १।१। ७।१)

अमर श्रि बंशीधर सुर लाये।
जदुपति स्यामावर उर गाये।
भवपति सीतापति जिय आये।
वृजपति राधापति प्रभु माये।३८।

पुनः

× ×
(१। ५।२।११।७।४। १)

श्रीपते सूरति लाइ ररौ ये।
श्रीपते उरति गाइ पलौ ये।
श्रीपते जियहि आँनि भलौ ये।
श्रीलये प्रभुहि मानि पलौ ये।३९।

मल्लिका छंद

× × × ×
(१। ३।३। ६।३। २।१।६)

श्री धराप राघवेति।
श्री रमाप वामनेति।
श्री रघूप जादवेहि।
श्री कृपाल माधवेहि।४०।

पध्धड़ी छंद

× × × × ×
(१।३।१२।३। ३। २। १। ४।१)

कृष्ण श्री राघवे लाइ लौय ।
गोविंद वामने गाइ लौय ।
बाराह जादवे आंनि लोय ।
गोपाल माधवे मानि लौय ।४१।

पोपाल छंद

× × × ×
(१। २।५। ८।३। ३।२।७)

श्री य धरापति राघव लाइ ।
श्रीद रमापति वामन गाइ ।
श्रीह रघूपति जादव आनि ।
श्रील कृपालय माधव मांनि ।४२।

आभीर छंद

× ×
(१६।८। ७)

राघवे सूरति लाइ ।
वामने उरति गाइ ।
जादवे जियहि आंनि ।
माधवे प्रभुहि मांनि ।४३।

मल्लिका छंद

× × × ×
(१। ३।३।१५।२। १।१। ४।१)

श्री धराप लाइ लौय।
श्री रमाप गाइ लौय।
श्री रघूप आंनि लौय।
श्री कृपाल मांनि लौय।४४।

अमृत गति छंद

× × × ×
(६।२। ८।५। १।२। ७)

पति राघवे सुर लाइ।
पति बामने उर गाइ।
पति जादवे जिय आँनि।
पति माधवे प्रभु माँनि।४५।

दोधक छंद

× × ×
(१। २।५। १०।१। ७।५)

श्री य [श्री] धरापति वे धारिय।
श्रीद रमापति ने मति टारिय।
श्रीह रघूपति वे सुविचारिय।
श्रील कृपालय वे न बिसारिय।४६।

मौक्तिकदाम छंद

× × × ×
(४।३। ५।७। ३।२। ७)

श्री धराप बंसीधर राघव लाइ।
रमाप स्यामावर वामन गाइ।
रघूप सीतापति जादव आंनि।
कृपाल राधापति माधव मांनि।४७।

चर्चरी छंद

× × × ×
(१। ३।३। ५।६। ५।४। १)

श्री धराप वंसीधरे राघवे सुरमति धारि।
श्री रमाप स्यामावरे वामने उरमति टारि।
श्री रघूप सीतापते जादवे जिय सुविचारि।
श्री कृपाल राधापते माधवे प्रभु न बिसारि।४८।

तोमर छंद

× × × ×
(१।३।३।६।३।३।२।७)

श्री धरप राघव लाइ।
श्री रमप वामन गाइ।
श्री रघूप जादव आनि।
श्री कृपल माधव मांनि।।४६।।

गंधबेसरी छंद

× × × ×
(४।३।१।११।३।४।४।१)

धरप अमर श्री बंसीधर राघवे लाइ ररौ य।
रमाप जदुपति स्यामाबर बामने गाइ परौ य।
रघूप भवपति सीतापति जादवे आनि भलौ य।
कृपल वृजपति राधापति माधवे मानि पलौ य।।५०।।

कुसुमविचित्रा छंद

× × × ×
(४।४।४।४।१०।४।१)

धरपति बंसीधर मति धारि।
रमपति स्यामावर मति टारि।
रघूपति सीतापति सुबिचार।
कृपलय राधापति न बिसारि।।५१।।

तरनिजा छंद

× ×
(४।८।१६)

धरपते, अमरते।
रमपते, जदुपते।।५२।।

कुमारलीला छंद

× × ×
(१२।४।५।२।७।१)

वंसीवरति लाये ।
स्यामावरति गाये ।
सीतापतिहि आये ।
राधापतिहि माये ।।५३।।

मधुभार छंद

× × ×
(७।४।११।२।७)

ते अम्र लाइ ।
ते जदुपति गाइ ।
ते रघुप आनि ।
ये वृजप मानि ।५४।

चामर छंद

× × × × × ×
(१।३।४।४।३।१।३।२।३।१।१।५)

श्री धरापते वंसीधर राघवेति लाइ लौं ।
श्री रमापते स्यामावर वामनेति गाइ लौं ।
श्री रघूपते सीवाप जादवेहि आनि लौं ।
श्री कृपालये रावाप माधवेहि मानि लौं ।५५।

चौपाइ छंद

× × × ×
(१।५।२।८।३।३।४।४।१)

श्रीपति राघव लाइ ररौ ये।
श्रीपति बामन गाइ पलौ ये।
श्रीपति जादव आनि भलौ ये।
श्रीलय माधव मांनि पलौ ये।५५।

सोरठा छंद

× ×
(२२।८।१)

लाइ ररौ मति धारि।
गाइ पलौ मति टारियैं।
आनि भलौ सुबिचारि।
मानि पलौ न बिसारियैं।५७।

बरवै छंद

× × × ×
(४।४।४।७।३।२।७)

धरापते बंसीवर राघव लाइ।
रमापते स्यामावर बामन गाइ।५८।

अन्यच्च ।। क्रमपूर्वक।।

रघूपति सीतापति जादव आंनि।
कृपालये राधापति माधव मांनि।५९।

दोहा छंद

× × × × ×
(४।४।४।४।३।५।२।४।१)

धरापते बंसीधर सूरति लाइ मति धारि ।
रमापते स्यामावरे उरति गाइ मति टारि ।६०।

अन्यच्च

रघूपते सीतापते जियहि आंनि सुबिचारि ।
कृपालये राधापते प्रभुहि मांनि न बिसारि ।६१।

वरवै छंद

× × × ×
(११।८।१।२।४।४।१)

श्री बंसीधर राघव रति मति धारि ।
ते स्यामावर बामन रति मति टारि ।६२।

अन्यच्च

ते सीतापति जादव जिय सुबिचारि ।
ते राधापति माधव प्रभु न बिसारि ।६३।

दोहा छंद

× × × ×
(८।४।४।३।२।१।२।७)

श्री कृष्ण श्री धरापते बंसीधर सुर लाइ ।
श्री गोविन्द रमापते स्यामावर उर गाइ ।६४।
श्री वाराह रघूपते सीतापति जिय आंनि ।
श्री गोपाल कृपालये राधापति प्रभु मांनि ।६५।

चौवोला छंद

× ×

(१६।२।१।८।१)

श्री कृष्ण श्री धरापति अमर सी बंसीधर राघवेति ये ।
श्री गोबिन्द रमापति जदुपति स्यामाबर वामनेति ये ।
श्री वाराह रघूपति भवपति सीतापति जादवेहि यैं ।
श्री गोपाल कृपालय वृजपति राधापति माधवेहि यैं ।६६।

भुजंगप्रयात छंद

× × × ×

(११।८।३।२।१।१।४।१)

श्री वंसीधरे राघवे लाइ लौयें ।
ति स्यामाबरे वामने गाइ लौयें ।
ति सीतापते जादवे आनि लौये ।
ति राधापते माधवे मानि लौयें ।६७।

तरनिजा छंद

× ×

(४।८।१६)

रघूपते ! भवते । कृपलये । वृजपते ।६८।

श्री छंद

× × × ×

(१।१०।१।४।१।११।१।२)

श्री।।श्री।।रा।।धा।६९।

हरि छंद

× × ×
(१४।२।३।२।१०)

धर।।बर।।सुर।।उर।।७०।

रमन छंद

× ×
(१६।२।६।१)

सुरये।।उरये।।जियये।।प्रभुये।।७१।

पुंज छंद

(१६।२। १२७)

सुर लाइ । उर गाइ । जिय आनि । प्रभु मानि ।।७२।।

पुनः

× ×
(२६।४।१)

मति धारि । म (ति) टारि । सुविचारि । न विसारि ।।७३।।

वारि छंद

× × ×
(१।५।१।१५।२।७)

श्रीप लाइ । श्रीप गाइ । श्रीप आनि । श्रीप मानि ।।७४।।

प्रिया छंद

×
(२।५)

मति धारियैं । मति टारियैं ।
सुविचारियैं । न बिसारियैं ॥७५॥

मंथाना छंद

× × ×
(१२।४।६।२।७)

बंशीधरे लाइ । स्यामाबरे गाइ ।
सीतापते आनि । रावापते मांनि ॥७६॥

विजोहा छंद

× × ×
(१।५।१।५।४।१५)

श्रीप बंसीधरे । श्रीप स्यामावरे ।
श्रीप सीतापते । श्रील राधापते ॥७७॥

किल्ली छंद

× ×
(२०।६।५)

रति लाइ ररौ । रति गाइ परौ ।
जिय मांनि भलौ । प्रभु मानि पलौ ॥७८॥

मालती छंद

× ×
(२४।६।१)

ररौ मति धारि। पलौ मति टारि ।
भलौ सुविचारि । पलौ न बिसारि ।।७६।।

कुमारलीला छंद

× × ×
(४।४।१६।२।४।१)

धरापति ररौ ये । रमापति पलौ यें ।
रघूपति भलौ ये । कृपालय पलौ यें ।।८०।।

नगर स्वरूपिणी छंद

× × ×
(४।४।२३+२७।४)

धरापते रमापते रघूपते कृपालयैं ।
तिधारियैं ति टारियैं विचारियै बिसारियैं ।।८१।।

धरा छंद

√×√× × × ×
(१।१५।३।१२ + २१।३।१।१।५)

श्री राघवे । श्री वामने । श्री जादवे । श्री माधवे ।
ति लाइ लौ । ति गाइ लौ । हि आनि लौ । हि मानि लौ ।।८२।।

---

८१. प्रथम पंक्ति में ४।४।२३ और द्वितीय पंक्ति में २७।४ का क्रम है।

तोमर छंद

× × × ×
(१६।२।१।२।१।५।१)

सुर लाइ लौ मति धारि ।
उर गाइ लौ मति टारि ।
जिय आनि लौ सुबिचारि ।
प्रभु मानि लौ न बिसारि ॥८३॥

द्रुमिला छंद

× × ×
(१।२।५।४।६।१।६)

श्रीय (श्री) धरापति वंसीवरे राघवे रति (सुर) लाइ ररौ मति धारियैं ।
श्रीद रमापति स्यामावरे वामने उर गाइ पलौ मति टारियैं ।
श्रीह रघूपति सीतापते जादवे जिय आनि भलौ सुविचारियैं ।
श्रील कृपालय राधापते माधवे प्रभु मानि पलौ न बिसारियैं ॥८४॥

गंगोदक तथा खंजा छंद

×
(१।३।२७)

श्री धरापते अमर श्री वंसीवरे राघवे सुरति लाइ ररौ मति धारियैं ।
श्री रमापते जदुपते स्यामावरे वामने उरति गाइ पलौ मति टारियैं ।
श्री रघूपते भवपते सीतापते जादवे जियहि आनि भलौ सुविचारियैं ।
श्री कृपालये वृजपते राधापते माधवे प्रभुहि मानि पलौ न विसारियैं ।८५।

---

८२. इस छंद में भी दो क्रम है ।

रोला छंद

× ×
(१२।१८।१)

बंसीधर राघवे सुरति लाइ ररौ मति धारि।
स्यामावर बामने उरति गाइ पलौ मति टारि।
सीतापति जादवे जियहि आँनि भलौ सुबिचारि।
राधापति माधवे प्रभुहि मानि पलौ न बिसारियैं ।।८६।।

अनुष्टुप छंद

× × × × × ×
(१।३।१२।३।३।२।७।१।३।२२।५)

कृष्ण श्रि राघवे लाइ। बाराह सुबिचारियैं।
गोविंद बामने गाइ। गोपाल न बिसारियैं।।८७।।

सोरठा छंद

×
(७।२४)

श्री कृष्ण श्रि धराप श्री गोपाल कृपालये।
श्री गोविंद रमाप श्री वाराह रघूपते ।।८८।।

बंसध्वनि छंद

× × × ×
(१।३।८।७।५।२।५)

कृष्ण श्रि बंशीधर राघवे ररौ।
गोविंद स्यामावर बामने परौ।
वाराह सीतापति जादवे भलौ।
गोपाल राधापति माधवे पलौ ।।८९।।

ससिवदना छंद

× × ×

(८।४।६।१।११।१)

अमर श्रि वे ये । जदुपति ने ये ।
भवपति वे ये । वृजपति वे ये ।।६०।।

प्रिया छंद

× ×

(१२।४।१५)

बंसीधरे । स्यामाबरे ।
सीतापते । राधापते ।।६१।।

चंचला छंद

× × × ×

(१।३।४।३।५।३।२।३।७)

श्री धरापते बंसीधरे श्रि राघवे तिलाइ ।
श्री रलारते स्यामावरेति वामने तिगाइ ।
श्री रघूपते सितापतेहि जादवे हिआन ।
श्री कृपालये राधापतेति माधवे हिमान ।।६२।।

तोटक छंद

× × × × ×

(६।२।४।४।३।२।१।४।५)

पति वंसीधरे सुर लाइ ररौ ।
पति स्यामावरे उर गाइ परौं ।
पतिं सीतापते जिय आंनि भली ।
लय राधापते प्रभु मानि पली ।।६३।।

---

६२. इस छंद में वर्ण १३ से १६ तक के पश्चात् वर्ण १२ का क्रम है और उसके पश्चात् फिर १७ से १६ तक तीन वर्ण लिए गए है। इस प्रकार इस छंद में ग्रहण-त्याग के क्रम का अपवाद मिलता है।

सुषद छंद

× × × × ×

(१।५।१।१।३।१।७।३।४।५)

श्रीप अमर बंसीधर राघव लाइ रद ।
श्रीप जदुप स्यामावर बामन गाई पद ।
श्रीप भवप सीतापति जादव आनि भलु ।
श्रील वृजप राधापति माधव नानि पलु ॥६४॥

इत छंद सम्पूर्ण

अथ कामधेनु के विष्णुपदं कथ्यते—

राग भैरव

× × × ×

(१।३।३।५।६।१।१।७।१)

श्री धराप बंसीधर राघर सुर लाये ।
श्री रमाप बंसीधर [स्यामावर]उर गाये ।
श्री रघूप सीतापति जादव जिय आयैं ।
श्री कृपाल राधापति माधव प्रभु माये ॥६५॥

राग रामकली टेक

(११।५।३।२।१।२।७।४।१७।१।२।७)

श्री बंसीधरे सुर तयइ

रमापते जदुपति स्यामावर बामने उर गाइ ॥१
रघूपते भवपति सीतापति जादवे जिय आंनि ।
कृपालये वृजपति राधापति माधवे प्रभु भांनि ॥६६॥

---

६६. इस राग में प्रथम पंक्ति का प्रथम क्रम है तथा शेष पंक्तियों में द्वितीय क्रम चलता है ।

राग रामकली टेक

× × × × × × ×
(१।१०।१।४।३।७।४।२+८।१३।५।४।१)

श्री श्री राघवे मति धारि
जदुपते स्यामावरे वामने उर मति टारि ।।१।।
भवपते सीतापते जादवे जिय सुविचार ।
वृजपते राधापते माधवे प्रभु न बिसारि ।।९७।।

राग विलावल

× × × ×
प्रथम— (१३।६।१।२।४।४।१)

सीधर राघव रति मति धारि ।
मावर वामन रति मति टारि ।।१।।

× × ×
द्वितीय— (१२।६।१।२।७)

वंसीधर राघव सुर लाइ ।
स्यामावर वामन उर गाइ ।
सीतापति जादव जिय आँनि ।
राधापति माधव प्रभु मांनि ।।२।।

× ×
तृतीय— (८।११।१२)

अमर श्री वंसीधर राघवे ।
जदुपति स्यामावर वामने ।
भवपति सीतापति जादवे ।
वृजपति राधापति माधवे । ३।।

---

९७. इस राग में भी प्रथम पंक्ति का प्रथम क्रम है ।

× ×

चतुर्थ— (४।२०।६।१)

श्री कृष्ण श्रि ररौ मति धारि।
श्री गोविंद पलौ मति टारि।
श्री वाराह फलौ सुविचारि।
श्री गोपाल पलौ न विसारि ॥९८॥

राग आसावरि

× × × × × ×
(११।५।१२।२।१ + ८।८।८।२।४।१)

श्री वंसीधर धारि।

श्री कृष्ण श्रि धरापति राघव सुरति लाइ मति धारि।
श्री गोविंद रमापति वामन उरति गाइ मति टारि ॥१॥

श्री वाराह रघूपति जादव जियहि आंनि सुविचारि।
श्री गोपाल कृपालय माधव प्रभुहि मांनि न विसारि ॥९९॥

राग आसावरी

× × × × × × ×
(१६।३।१।२।४।४।१ + १।७।११।३।८।१)

राघव रति मति धारि।

श्री अमर श्री वंसीधर राघव लाइ ररौ मति धारि।
श्री जदुपति स्यामावर वामन गाइ पलौ मति टारि ॥१॥
श्री भवपति सीतापति जादव आनि भलौ सुविचारि।
श्री वृजपति राधापति माधव मानि पलौ न बिसारि ॥१००॥

---

९८. इस राग में ४ क्रम हैं।
९९. इस राग में पाण्डुलिपि में प्रथम पंक्ति 'रे मन' लगाकर आरम्भ किया गया है, किन्तु यह राग की वर्णमाला का अंग नहीं है।
१००. इस राग में प्रथम पंक्ति के अन्त में 'रे मन' जुड़ा है।

राग पंचम

× ×
(१।३।२०।२।५)

श्री धरापते अमर श्री वंसीधरे राघवे सुरति लाइ मति धारियै ।
श्री रमापते जदुपते स्यामावरे वामन उरति गाइ मति टारियै ।।१।।
श्री रघूपते भवपते सीतापते जादवे जियहि आँनि सुविचारियै ।
श्री कृपालये वृजपते राधापति माधवे प्रभुहि मांनि न विसारियै ।।१०१।।

राग सारंग

× × × × ×
(४।३।१।८।३।२।१।८।१)

धरप अमर श्री वंसीधर सुर लाइ ररौ मति धारि ।

कृष्ण सुष लाइ ररौ मति धारि ।
रमप जदुपते स्यामावर उर गाइ पलौ मति टारि ।।१।।
रघूप भवपते सीतापति जिय आँनि फलौ सुविचारि ।
कृपल वृजपते रावापति प्रभु मानि पलौ न विसारि ।।१०२।।

राग गौरी

(४।३।१।३।१०।१।२।७+४।७।१।१६)

धरण अमरति ररौ मति वरियैं ।
रमपति जदुप स्यामावर वामन उरति गाइ पलौ मति टरियैं ।।१।।
रघूपति भवपति सीतापति जादव जियही आनि भलौ सुविचरियैं ।
कृपलय वृजप राधापति माधव प्रभु ही मानि पलौ न विसरियैं ।१०३।

राग काफी

× × × × × ×
(१।३।७।५।३।४।७।१+१२।४।७।७।१)

कृष्ण श्रिति वंसीधर सुरति लाए ।
श्री कृष्ण श्रि धरापति अमर श्री राघवे सुरति लाए ।
श्री गोविंद रमापति जदुपति वामने उरति गाए ।।१।।
श्री वाराह रघुपति भवति जादवे जियहि आए ।
श्री गोपाल कृपाल (य) वृजपति माधवे प्रभुहि माए ।।१०४।।

राग मल्हार

× × × × × ×
(१२।६।५।४।१+१२।४।५।५।४।१)

बंसीधर राघव सुर मति धारि।
श्री गोविंद रमापति जदुपति वामन उर मति टारि ।।१।।
श्री वाराह रघूपति भवपति जादव जिय सुविचारि।
श्री गोपाल कृपालय वृजपति माधव प्रभु न विसारि ।।१०५।।

राग षट

× × × ×
(४।३।१।३।१।७।७।५)

धरप अमर बंसीधर राघव मति धारियैं।
रमप जदुप स्यामाधर वामन मति टारियैं ।।१।।
रघूप भवप सीतापति जादव सुविचारियैं।
कृपल वृजप राधापति माधव न विसारियैं ।।१०६।।

राग काफी

× × × ×
(११।१०। ५।५+१२। ७।३। २)

श्री बंसीधर राघव सुर मति धारियैं।
श्री कृष्ण श्रि धरापति अमर श्रि सुरति ररौ मति धारियैं।
श्री गोविंद रमापति जदुपति. उर तें पलौ मति टारियैं।
श्री वाराह रघूपति भवपति जियहि भलौ सुविचारियैं।
श्री गोपाल कृपालय वृजपति प्रभुहि पलौ न विसारियैं ।।१०७।।

राग परज

× × × ×
(११।५। ३।२। ५।५+७। ८।१५)

श्री बंसीधर सुर मति धरियैं।
श्री गोविंद रमापति वामन उरति गाइ पलु मति टरियैं ।।१
श्री वाराह रघूपति जादव जियहि आँनि भलौ सुविचरियैं।
श्री गोपाल कृपालय माधव प्रभुहि मानि पलौ न बिसरियैं।

---

१०६. प्रथम तथा तृतीय पंक्तियाँ पाण्डुलिपि में 'श्री' वर्ण से आरम्भ हुई हैं, किन्तु यह वर्ण राग का अंश नहीं है।

राग बंसत

× × ×
(६२।७। ३।२। ७)

बंसीधर राघवे लाइ। स्यामावर वामने गाइ।
सीतापति जादवे आँनि। राधापति माधवे मानि।१०६।

इति कामधेनु के विष्नुपद सम्पूर्ण।

फलस्तुति

दोहा

कामधेनु के छंद सब कहि कौ सकै गनाइ।
लहे जथामति कहे ते सूरति सबनि सुनाइ।१।

इते छंद कछु मैं कहे अपनी मति वल देषि।
और हूँ अपने बुद्धि वल कबिकुल लीजहु लेषि।२।

अति रति मति धरि वांचियौ पावन सतनव छंद।
रटत हटत अघ ताप त्रय मिटत कटत भव फंद।३।

कामधेनु जो ग्रन्थ कौं पढ़ें गुनैं रति लाइ।
च्यार पदारथ भजन सुख ताहि देत हरिराइ।४।

यह कवि विप्र कनौजिया जानहु सूरत नाम।
नगर आगरें तिनि कियौ कामधेनु सुषधाम।५।

सत्रह सैं उनसठ वरष माधव सुदि गुरुवारु।
पुष्प सप्तमी कौं भयो कामधेनु अवतारु।६।

सूरत कृत यह काम धुक सकल कामदा मित्र।
ज्यौं ज्यौं वढैं पढैं भगति राधावर की चित्त।११६।

इति श्री सूरति मिश्र कृत कामधेनुकवित्त सम्पूर्णं। समाप्तं। लिखितं मिश्र इन्द्रमणिना। श्री। शुभम्। श्री॥

---

१०६. इस पद के आरम्भ में भी पाण्डुलिपि में 'श्री' वर्ण जुड़ा है, जो राग का अंश नहीं है।